भारत-स्वातन्त्र्य-स्व[illegible]न्ती-ग्रन्थमाला-12



पुरन्ध्रीपञ्चकम्

वेदकुमारी घई



राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्

भारत-स्वातन्त्र्य-स्वर्णजयन्ती-ग्रन्थमाला-

पुरन्ध्रीपञ्चकम्

वेदकुमारी घई



राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्

भारत-स्वातन्त्र्य-स्वर्णजयन्ती-ग्रन्थमाला—12

पुरन्ध्रीपञ्चकम्

(संस्कृतरूपकसङ्ग्रहः)

वेदकुमारी घई



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

1998

प्रकाशक :

डॉ० कमलाकान्तमिश्रः

निदेशकः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

५६-५७, इंस्टीट्यूशनल एरिया

जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८

दूरभाष: ५५४०९९३, ५५४०९९५

प्रथमसंस्करणम् १९९८

विक्रमसंवत् २०५५

मूल्यम् : ५०/- रुपये

मुद्रकः

अमर प्रिंटिंग प्रैस

दिल्ली-९ दूरभाष : ७२५२३६२

प्राक्कथनम्

योऽनूचानस्स नो महान् इत्युद्दिश्य संस्कृतसंरक्षणसंवर्धनप्रचारप्रसारात्मकं स्वोद्देश्यं साधु निर्वहदिदं **राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानं** भारतस्वातन्त्र्यस्वर्णजयन्तीं विविधैश्शैक्षिककार्यक्रमैरायोजयदिति विज्ञाय समेषां विदुषां संस्कृतानुरागिणां च मनांस्यवश्यं मोमुद्येरन् ।

प्राचीनशास्त्राणां संरक्षणे, संवर्धने, संस्कृताध्ययनपरम्पराया राष्ट्रियैकात्मतासंवर्धनशक्तेश्च प्रचारार्थं संस्थानेनानेन निरन्तरं विहितं सत्प्रयत्नं योगदानं च विद्वत्समवायस्सर्वथाभिनन्दतीति विश्वस्यते ।

भारतस्वातन्त्र्यस्वर्णजयन्तीमभिलक्ष्य प्रवर्तितायां योजनायां राष्ट्रस्यास्य विभिन्नेषु प्रान्तेषु विद्योतमानैर्विद्वत्तल्लजैः नानाशास्त्राणि। तत्र निहितानि वैज्ञानिकतत्त्वानि चाधिकृत्य विरचितानि ग्रन्थकुसुमानि सादरं सञ्चित्य सङ्ग्रथ्य च **भारत-स्वातन्त्र्य-स्वर्णजयन्ती-ग्रन्थमालात्वेन** तत्रभवतां समक्षमुपस्थाप्य महानानन्दस्सन्तोषश्चोप- जायेते ।

तत्रेदं **पुरन्ध्रीपञ्चकम्** इति ग्रन्थरत्नं राष्ट्रपतिसम्मानपुरस्कृताभिः जम्मूविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागाध्यक्षचराभिः **डॉ० वेदकुमारी-घई** महोदयाभिः प्रणीतम् । रूपकपञ्चकेऽस्मिन् मेनकाद्रौपदीमदालसासुगन्धा-विलीनानां पञ्चपुरन्ध्रीणां विशिष्टं चरित्रम् अद्यतनीयसामाजिकसमस्यासमाधान-दृष्ट्या रोचकप्रासादिकशैल्या चित्रितम्। एतानि रूपकरत्नानि संस्थानस्य **भारत- स्वातन्त्र्य-स्वर्ण-जयन्ती-ग्रन्थमालायां** प्रस्तुतवतीभ्यः डॉ० घईमहोदयाभ्यः वयं हार्दिकं कार्तज्ञ्यं ज्ञापयामः ।

भारतस्वातन्त्र्यस्वर्णजयन्तीसमारोहाङ्गत्वेन संस्थानेन आयोजितेषु विविधशैक्षिकानुष्ठानेषु, विशेषतो ग्रन्थमालायाः आयोजनप्रकाशनादिकार्येषु

कृतभूरिपरिश्रमाः अस्माकं सहयोगिनः विशेषेण डॉ० सविता-पाठक, डॉ० विरूपाक्ष वि० जड्डीपाल-प्रभृतयः साधुवादार्हाः ।

अमरमुद्रणालयाधिकारिणः ग्रन्थममुं सम्मुद्र्य यथासमयं लोकार्पणाय च प्रस्तूय अस्माकं सङ्कल्पसिद्धौ विशिष्टं सहयोगं कृतवन्तः । एतदर्थं ते धन्यवादार्हाः ।

११.९.१९९८ **कमलाकान्तमिश्रः**

नवदेहली निदेशकः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

अवतरणिका

यजुर्वेद के बाइसवें अध्याय के **बाइसवें** मन्त्र में राष्ट्र के कल्याण के लिए की गई प्रार्थना में राष्ट्र की उन्नति के लिए **पुरन्धियोंषा** की कामना की गई है अर्थात् राष्ट्र की नारी परिवार और राष्ट्र को धारण करने में समर्थ हो। भवभूति ने उत्तररामचरित में कहा है—**पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति** (उत्तर० ४.१२) नारियों का हृदय फूलों की तरह सुकोमल होता है। पर नारी में केवल हृदय की कोमलता ही नहीं, बुद्धि की तीक्ष्णता, भावना से ऊपर उठकर कर्तव्यपालन की दक्षता एवं संकल्प की दृढ़ता भी होती है। उसमें दुर्गा की प्रचण्ड वीरता है तो सरस्वती की ज्ञानशुचिता भी है। बेटी, बहन, पत्नी, माँ, नानी दादी इन अनेक रूपों में उसका समाज के निर्माण में योगदान रहा है परन्तु फिर भी समाज में उसे समुचित स्थान नहीं मिल पाया है। इस **पुरन्ध्रीपञ्चकम्** नामक रूपकसंग्रह के प्रथम चार रूपकों के नारीपात्र प्राचीन भारतीय नारी के इन्हीं कुछ गुणों को अभिव्यक्त करते हैं। प्राचीन प्रसङ्गों को आधुनिक सन्दर्भ में रखकर कुछ समसामयिक समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास भी इनमें किया गया है। रेडियो कश्मीर-जम्मू के द्वारा इन सभी रूपकों का प्रसारण हो चुका है और जनता ने इन्हें सराहा है।

मेनकावात्सल्यम् में निर्मम प्रेमी द्वारा छोड़ दी गई एक नारी के दृढ़ संकल्प का चित्रण है जो कठिन परिस्थितियों में अपने शिशु को जन्म देकर उसके भविष्य के निर्माण के लिए उसे कण्व ऋषि के आश्रम में रख देती है। मेनका नहीं चाहती कि उसकी बेटी भी अपनी माँ की तरह जीवन भर परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र या उसके पुत्र जयन्त के इशारों पर नाचती रहे। वह उसे सुशिक्षित कुलवधू का स्थान समाज में दिलाना चाहती है।

अपूर्वः प्रतिशोधः में द्रौपदी के हृदय की उथल-पुथल तथा सहसा अन्तर्मन से उदित उदारता का अङ्कन है। अपने पाँचों पुत्रों के हत्यारे अश्वत्थामा को मृत्युदण्ड देकर वह एक और माँ को पुत्रविहीना नहीं करना चाहती। अश्वत्थामा को अभय देकर वह उसके हृदय में पश्चात्ताप की अग्नि जला देती है। अनुतप्त अश्वत्थामा के माँ सम्बोधन मात्र से ही उसे **अपूर्व प्रतिशोध** प्राप्त हो जाता है। **हिंसा या प्रतिहिंसा से हिंसा का अन्त नहीं होता यही इस रूपक का सन्देश है**।

मदालसा में एक आदर्श भारतीय नारी का चित्रण है जो पुरुष की दासी बनकर नहीं अपितु परमसहयोगिनी बनकर जीना चाहती है। अपने बच्चों को स्वयं शिक्षा देने में सक्षम यह माँ अपनी योजना के अनुसार उन्हें योगी, वैज्ञानिक, दार्शनिक या राजनीतिज्ञ बना देती है। पर्यावरणसंरक्षण तथा वनवासियों के प्रशिक्षण के लिए उसका प्रयास उल्लेखनीय है।

सुगन्धा में कश्मीर के राजा शंकरवर्मा की विदुषी पत्नी का वर्णन है जो पति के शासनकाल में उठे धार्मिक विवादों को शान्त करवाती है। पति और पुत्र की मृत्यु के बाद भी वह देश का शासन समुचित रूप से चलाने का यत्न करती है।

द्राक्षामतः शकुन्तला की नायिका विलीना स्वाभिमानिनी नारी है और नायक द्राक्षामान् चिरप्रेमी है जो प्रेमिका का परित्याग तो कर देता है पर जीवन भर उसे भुला नहीं पाता। डेनमार्क के कवि होल्कर द्राखमैन की **शकुन्तला** शीर्षक कविता से प्रेरित होकर लिखा गया यह रूपक दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों को उजागर करता है।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के **निदेशक एवं काव्यमर्मज्ञ डॉ० कमलाकान्त मिश्र** के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ जिनकी अहैतुकी प्रेरणा से यह संग्रह प्रकाश में आ सका है।

जम्मूतवी
२५-७-१९९८

—वेदकुमारी घई

पुरन्ध्रीपञ्चकम्

मेनकावात्सल्यम्

कथासार

कालिदास के पात्रों में एक उपेक्षित पात्र अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका शकुन्तला की माँ मेनका है जिसके विषय में **बेटी को प्यार करने वाली (दुहितृवत्सला मेनका)** मात्र कहकर महाकवि ने चुप्पी साध ली है । उसी उपेक्षित पात्र मेनका के व्यक्तित्व की झलक इस रूपक में दी गई है । मेनका इन्द्रसभा की गणिका है जिसकी आजीविका का साधन गायन और नृत्य है । इन्द्र के आदेश पर वह विश्वामित्र का तपोभङ्ग करने जाती है पर उसके हृदय में पत्नी बनकर घर बसाने की इच्छा जागृत होती है । उसके सभी सपने तब टूट जाते हैं जब विश्वामित्र गर्भावस्था में उसे अकेली छोड़कर कहीं चले जाते हैं और वापिस नहीं लौटते । पतिपरित्यक्ता यह नारी आत्महत्या नहीं करती, अपने धैर्य और साहस का परिचय देते हुए जंगल में ही बेटी को जन्म देती है । बेटी के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण के लिए वह जी कड़ा करके बेटी को कण्व ऋषि और गौतमी के हवाले कर देती है । बेटी की शिक्षा-दीक्षा के विषय में वह पता करवाती रहती है । शकुन्तला के विवाह के पश्चात् उठी समस्या के समाधान में भी उसका अप्रत्यक्ष योगदान है । उसके उद्देश्य की पूर्ति तभी होती है जब उसकी बेटी शकुन्तला गृहिणी और माँ के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है ।

प्रथम एवं द्वितीय दृश्य

इन्द्रसभा की अप्सरा मेनका को इन्द्र से आदेश मिलता है कि वह ऋषि विश्वामित्र की तपस्या को भंग करने का उत्तरदायित्व ले । न चाहते हुए भी वह

आज्ञा का पालन करने में सम्मति व्यक्त कर देती है। दूसरे दृश्य में मेनका वसन्त के समय विश्वामित्र के तपोवन में पहुँचती है तथा वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों से प्रभावित होती है। विश्वामित्र को देखकर वह मन ही मन उन्हें पति रूप में वरने का और गृहस्थिनी होने का निर्णय लेती है। उसके रूपसौन्दर्य और गायन कला से आकृष्ट विश्वामित्र भी उसके प्रति प्रणय भाव प्रकट करते हैं। मेनका वहीं उन्हीं के पास ठहर जाती है।

तृतीय दृश्य

विश्वामित्र मेनका को छोड़ कर जा चुके हैं। पुत्री को जन्म देने के कुछ समय बाद मेनका उसे लेकर कण्व ऋषि के आश्रम के द्वार पर जा पहुँचती है। गौतमी कण्व ऋषि को बताती है कि आश्रम के द्वार पर एक पतिपरित्यक्ता दुःखी नारी छोटी सी बच्ची को लेकर आई है। कण्व मेनका से उसकी व्यथाकथा सुनते हैं तथा इस बात से प्रभावित होते हैं कि वह स्वयं इन्द्र की नर्तकी गणिका होने पर भी अपनी बेटी को गणिका नहीं बनाना चाहती अपितु गुरुकुल में प्रविष्ट कराकर उच्च शिक्षा से सुसज्जित कर अच्छी गृहिणी बनाना चाहती है। चार वर्ष पहले गौतमी भी तो वैधव्य का दुःख लेकर अपनी बेटी अनसूया को शिक्षित करने के उद्देश्य से उनके पास आई थी और आज वह छात्र छात्राओं को माँ सा प्यार देती छात्रावास निरीक्षिका के रूप में उनकी सहायता कर रही है।

कण्व इस बात से व्यथित हैं कि नारी और पुरुष का समान अपराध होने पर प्रायः नारी को ही दण्ड भोगना पड़ता है। मेनका को इन्द्रसभा में वापिस जाना है और बच्ची अभी बहुत छोटी है। गौतमी इस समस्या का समाधान बच्ची को गोद लेकर कर देती है। गौतमी उसे शकुन्तला नाम देती है और मेनका से कहती है कि छः मास बाद वह बिटिया को उनके पास छोड़ जाए, वही उसे पाले पोसेगी और गुरुकुल में शिक्षित कराएगी। केवल एक शर्त है कि शकुन्तला के शिक्षा काल में मेनका न तो गुरुकुल में आए और न ही माँ रूप में अपना परिचय शकुन्तला को दे। मेनका यह शर्त स्वीकार कर लेती है।

चतुर्थ दृश्य

मेनका स्वयं तो गुरुकुल में जा नहीं सकती पर अपनी सखी सानुमती को कभी कभार भेज कर शकुन्तला का समाचार प्राप्त करती रहती है । इस दृश्य में सानुमती और मेनका की बातचीत से पता चलता है कि शकुन्तला ने बचपन पार कर लिया है तथा उस का शास्त्राध्ययन और व्यावहारिक ज्ञानार्जन ठीक तरह चल रहा है । मेनका बेटी से दूर होने का दु:ख सहती है और बताती है कि मन पर पत्थर रख कर ही शिक्षा के लिए बेटी को दूर रखा है । सानुमती उसे आश्वस्त करते हुए बताती है कि शकुन्तला को गुरुकुल में पिता कण्व तथा माँ गौतमी का पूरा का प्यार मिल रहा है । समय आने पर वे उस का विवाह भी कर देंगे ।

पञ्चम और षष्ठ दृश्य

मेनका को कण्व के एक शिष्य शारद्वत से यह सूचना मिलती है कि कण्व ऋषि की अनुपस्थिति में सम्राट् दुष्यन्त ने तपोवन में आकर शकुन्तला से गान्धर्व विवाह कर लिया था और उसे शीघ्र हस्तिनापुर बुलाने का वचन दिया था । परन्तु बुलाया नहीं । जब कण्व ऋषि ने गर्भवती शकुन्तला को दो लड़कियों और गौतमी के साथ दुष्यन्त के पास भेजा तो उसने यह कह कर उसे अस्वीकार कर दिया कि मुझे स्मरण नहीं कि मैंने कभी इसके साथ विवाह किया था । मेनका को अपना ही इतिहास दुहराया जाता दिखाई देता है । शारद्वत द्वारा ही सानुमती ने मेनका को यह सन्देश भी भेजा है कि दुष्यन्त के इन्द्र तथा उसके पुत्र जयन्त के साथ अच्छे मैत्री सम्बन्ध हैं अत: इन्द्र और जयन्त के माध्यम से समस्या का समाधान ढूंढा जाए जिससे दुष्यन्त को अपनी भूल का अहसास हो । मेनका को मारीच ऋषि के आश्रम में पहुँचने को कहा गया है वहां शकुन्तला शिशु को जन्म देने पहुँची है । अन्तिम दृश्य में पश्चात्तापपीडित दुष्यन्त का मिलन पुत्र सर्वदमन और पत्नी शकुन्तला से होता है । सर्वदमन यह सूचना नानी मां को देता है जिसे सुनकर मेनका अपना जीवन कृतार्थ मानती है ।

पुरन्ध्रीपञ्चके प्रथमं रूपकम्

मेनकावात्सल्यम्

प्रथमं दृश्यम्

(इन्द्रसभायां सङ्गीतध्वनिः श्रूयते)

इन्द्रः—मेनके अस्मत्सभायां सङ्गीतनृत्यनाट्यशिरोमणिस्त्वं विशेषकार्याय अद्य आहूता ।

मेनका—देवराज ! उपस्थिताऽस्मि आदेशपालनाय । का आज्ञा वर्तते मत्कृते ? कीदृशं मनोरञ्जनं वाञ्छति अत्रभवान् ? मधुरतारास्फालितवीणास्वरेण भवत्कर्णौ आपूरयानि ? नूपुरमणिसमुज्ज्वले स्फटिकतले स्वनृत्य-कौशलं प्रदर्शयानि ? केनचित् मधुरगीतेन वा भवत्क्लमं दूरीकरवाणि ?

इन्द्रः—नहि मेनके नहि । एतादृशं मनोरञ्जनं तु अन्या अप्सरसः अपि विधातुं शक्नुवन्ति । भवती तु विशेषमहत्त्वपूर्णम् अनुपमं कार्यं सम्पाद्य मनो-वाञ्छितं पुरस्कारं लप्स्यते ।

मेनका—आज्ञापयतु महाराज !

इन्द्रः—कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो विश्वामित्रो नाम ऋषिः पृथिव्यां महत्तपस्तपते । तस्य तपसा मम हृदये काचित् शङ्का समुत्पादिता अत-स्त्वया तस्य तपोभङ्गं कृत्वा अस्मद् अशान्तं मनो रञ्जनीयम् ।

मेनका— भगवन् **केनचित् कस्यचिदपि धर्मकर्मणि विघ्नः न कार्यः** इत्येव सदाचारः श्रूयते । भवान् तु पृथिव्यां सर्वेभ्यः सुखानि वितरति । तत्र

तपस्यतः कस्यापि ऋषेः तपः दृष्ट्वा भवतः मनसि शङ्का किमर्थं जाता इति ज्ञातुं न शक्नोमि ।

इन्द्रः—सानुमति, विश्रम्यतां सर्वाभिः ।

सानुमती—यथाज्ञापयति अत्र भवान् । मेनके वयं गच्छामः । स्वकक्षे तव प्रतीक्षां करिष्ये ।

मेनका—अथ किम् ।

इन्द्रः—मेनके अस्माभिः त्वं सर्वासामप्सरसामधिकतरम् आद्रियसे परं भर्तुरादेश-पालने कारणं नहि प्रष्टव्यम् ।

मेनका—क्षम्यताम् । विस्मृता मया स्वस्थितिः । **अनुल्लङ्घनीयः खलु स्वामिनः आदेशः** । गमिष्यामि मर्त्यलोकम् ।

इन्द्रः—शोभनं शोभनम् । गच्छ कार्यसिद्ध्यनन्तरं पुनरागमनाय ।

मेनका—तथास्तु भगवन् !

द्वितीयं दृश्यम्

(तपोवने विहगानां ध्वनिः श्रूयते)

मेनका—अहो शान्तं मनोरमं तपोवनमिदम् । अस्मिन् एव वने राजर्षिः विश्वामित्रः तपस्तपति इति श्रुतं मया । नोत्सहे राजर्षे तपसि विघ्नम् उत्पादयितुम् । अन्तर्द्वन्द्वेन पीडिता, स्वभाग्यं भर्त्सयन्ती पदे पदे स्खलन्ती अग्रे गन्तुम् अपि न उत्सहे । किं करवाणि ? मनः दृढीकृत्वा अग्रे चलितव्यमेव । अये उत्फुल्लकुमुदकल्हारा निर्मलजलवापी समक्षमेव दृश्यते । वापीतटाद् आरभ्य वनान्तर्गता वल्कलशिखानिष्यन्दसलिलरेखा सूचयति यत् ऋषिकुटीरेण समीपमेव भवितव्यम् । एतामनुसृत्य गच्छामि । तालतिल-कमन्दारवृक्षैः पूरितं फलभारनमितैः सहकारकदलीवृक्षैः शोभितं तपो-वनमिदं स्वर्गादपि अधिकतरं निवृत्तिस्थानम् । नास्ति अत्र हिंसाया नाम । निश्शङ्कं विचरन्ति हरिणाः, इतस्ततः नृत्यन्ति कलापिनः, ताम्रमुखाः वानराः

फलानि भक्षयन्तः वृक्षाणां शाखातः शाखाम् उत्पतन्ति । वृक्षकिसलयानि आज्यधूमेन भिन्नवर्णानि प्रतीयन्ते । अत्रैव पश्यामि अशोकवृक्षमधः स्थाणुरिवाचलं ध्यानावस्थितं रक्तवल्कलाच्छादितम् उद्यदर्कबिम्ब-भास्वरमुखं राजर्षिविश्वामित्रम् । इमं प्रेक्ष्य निजचेतसि अननुभूत-पूर्वान्विकारान् अनुभवामि । इमं मोहयितुम् आगता क्वचित् स्वयमेव मुग्धा भवेयम् इति शङ्के । भवतु स्वकीयनर्तनगायनेन एनं मोहयितुं प्रयते ।

(गायनं प्रारभते)

अधुना स दिवस आयातः ।

पुरो मदीयःप्रिय आयातः ।।

पवनो मन्दं मन्दं वाति

मेघोऽयं स्वच्छन्दं याति

सुखे निमग्नः सर्वो जातः ।।

अधुना स दिवस आयातः ।

पुरो मदीयः प्रिय आयातः ।।

विश्वामित्रः—अये कुत इयमागता मधुरस्वरलहरी ?
विचलितमिव मे चित्तं श्रुत्वेमाम् ।
इत एव आगच्छति कापि अनन्यसुन्दरी रमणी वनदेवता वा । भवति ! काऽसि ? कुतः असि ? कथं च आगता अस्मिन् तपोवने ?

मेनका—मेनकानामधेया अहं भ्रमणार्थं प्रदेशात् प्रदेशं पर्यटन्ती धर्मारण्यमिदम् आगत्य अत्रत्येन पर्यावरणेन मोहिता कतिपयदिवसान् अत्र स्थातुमिच्छामि ।

विश्वामित्रः—**सर्वजनसुलभानि तपोवनानि** नाम । यथेच्छं तिष्ठतु अत्र भवती मम कुटीरस्य समीपे एव निर्मिते अन्यस्मिन् पर्णकुटीरे । अतिथिसत्काराय कन्दमूलफलानि एव अत्र प्राप्यन्ते ।

मेनका—अतिथिसत्कारस्तु अत्रभवता स्वशुचिस्मितेन, मधुरवचनैश्च सम्पादितः । प्रकृतिसौन्दर्ये मे महती रुचिः विद्यते ।

विश्वामित्रः—शोभनम् । अत्र अरण्ये प्रकृतिसौन्दर्यं तु सर्वत्र एव विकीर्णम्, द्रष्टुः दृष्टिः यदि अवलोकनक्षमा भवति ।

मेनका—यथा अहं पश्यामि अनिलसञ्चालितशाखाः तालतिलकतमालवृक्षा नृत्यन्त एव प्रतिभान्ति । नवकिसलयकरा लता मामपि आकारयन्ति ताभिः सह नर्तितुम् । मधुरं पिककूजितं सुप्तं मे कण्ठस्वरं जागरयति ।

विश्वामित्रः—स्पष्टमिदं कोकिलकूजितेव प्रेरिता अत्रभवती मधुरम् अगायत् । स्वररागवेत्ता नास्ति जनोऽयम्, परं भवत्या मधुरं स्वरं हृदयं मे स्पृशति । पुनरपि किञ्चित् श्रोतुम् इच्छामि ।

मेनका—भवदनुग्रहः एषः ममोपरि । सार्थकतामुपैति मे सङ्गीतमद्य ।

(गायति)

अधुना स दिवस आयातः ।

पुरो मदीयः प्रिय आयातः ॥

प्रथमदर्शने चाक्षुषप्रीतिः

पङ्गुपर्वतलङ्घनरीतिः

कथमपि पुण्यैर्योगो जातः ॥

अधुना स दिवस आयातः ।

पुरो मदीयः प्रिय आयातः ॥

विश्वामित्रः—देवि । मधुरं गीतम् । स्वरः मधुरः । भवत्याः दर्शनमपि मधुरम् । सर्वमेतत् मम हृदये प्रविष्टम् । भवती अपि मम चेतसि प्रविष्टा । किमहम् अपि भवत्याः चेतसि स्थानं लब्धुं शक्नोमि ?

मेनका—इदं गीतं तु मम आत्मनिवेदनम् । मम करे स्थिता इयं पुष्पस्रग् यदि भवता स्वीक्रियते तदा तु जीवनमेव भवच्चरणाभ्यां समर्पयामि ।

विश्वामित्रः—प्रकाशिते सति प्रणये किं पुष्पमालया ? तव मम च भुजौ एव स्रजौ भविष्यतः ।

(सहगानम्)

अधुना स दिवस आयातः.......... ।

तृतीयं दृश्यम्

(कण्वस्य तपोवनम्)

गौतमी—भगवन् उत्सङ्गे शिशुं धारयन्ती एका युवती गुरुकुलद्वारि स्थिता अत्रभवतां दर्शनम् इच्छति ।

कण्वः—ज्ञातः किं भवत्या तस्याः पूर्ववृत्तान्तः ? केन प्रयोजनेन सा अत्र आगता ?

गौतमी—आम् । ज्ञातं मया किञ्चित् । वर्षपूर्वं सा एकं पुरुषं गान्धर्वविधिना पतित्वेन वृतवती । परं कतिपयमासानन्तरं सः तां गर्भवतीम् एकाकिनीं परित्यज्य कुत्रापि गतः ।

कण्वः—अहो वञ्चकःसः किम् अद्यावधि नहि प्रत्यागतः ?

गौतमी—नहि । प्रथमं तु तस्या रूपलावण्यम् अवलोक्य मुग्धः स स्वयमेव तां पत्नीरूपेण स्वीकृतवान् परं कालान्तरे गृहस्थजीवनस्य उत्तरदायित्वं वोढुम् आत्मनः असमर्थतां प्रकटीकृतवान् ।

कण्वः—निन्दनीयं खलु कृत्यं तस्य । किं कृतं तदा वराक्या पत्न्या ?

गौतमी—तत्रैव वने पर्णकुटीरे सा तं प्रतीक्षमाणा दिवसान् मासान् यापितवती । वनदेवतानां साहाय्येन सा गतमासं पुत्रीं प्रसूतवती । पुत्रीमधिकृत्य एव सा भवत्साहाय्यं वाञ्छति ।

कण्वः—पतिविहीना सा स्वयं किं करिष्यति ? कुत्र निवसिष्यति ? भवतु, तया सह वार्तालापं कृत्वा सर्वं ज्ञास्यते, निर्णेतुं च शक्ष्यते । गौतमि ! भवत्या सा यज्ञभूमिमानेतव्या । अहमपि तत्र गच्छामि ।

गौतमी—यथेच्छति भवान् ।

कण्वः—(आत्मगतम्) अहो कष्टकरी स्थितिरियं नारीणाम् । **नारीपुरुषयोः समाने अपराधे सति प्रायशः नारी एव कष्टं भजते** इति विचिन्त्य मानसं मे व्यथितं भवति । पत्नीविहीनः सन्तानयुक्तः अपि पुरुषः पुनर्विवाहं शीघ्रम् एव रचयति परं पतिविहीना पत्नी प्रायशः वैधव्यदुःखपीडिता एव समस्तं जीवनं यापयति । चतुर्वर्षपूर्वं गौतमी वैधव्यं प्राप्य पुत्रीमनसूयां नीत्वा इमम् आश्रमम् आगता । मया भगिनीरूपेण स्वीकृता सा अत्र निवसतां शिशूनां किशोराणां च पालने पोषणे स्वदुःखं विस्मरति इति सन्तोषावहं मे । अहो ! आगते ते यज्ञभूमिम् ।

गौतमी—भगवन् !एषा सा नारी मेनका नामधेया ।

मेनका—प्रणमामि भगवन् ।

कण्वः—शान्तिस्ते भवतु । गौतम्या अहं श्रावितः यत् भवत्याः पतिः भवतीं परित्यज्य कुत्रापि गतः अद्यावधि नहि प्रत्यागतः । पितृविहीना पुत्रीयं त्वया यथा-कथञ्चित् पाल्यते इति । अस्ति किञ्चित् अन्यत् कथनीयम् ?

मेनका— दयानिधे ! अत्रभवन्तं विना व्यथिताया मे नास्ति किमपि शरणम् । अत्रभवतः दीनबन्धुता मया बहुशः श्रुता । अत्रभवते स्वव्यथां विनिवेद्य एव शान्तिं प्राप्स्यामि ।

कण्वः—कथयस्व पुत्रि निश्शङ्कम् । भाग्यविपर्यये सति अपि धैर्यं नहि त्याज्यम् ।

मेनका—भगवन् अहम् इन्द्रस्य सभायां नर्तकी आसम् । तस्य सङ्केतमात्रेण गायन्ती नृत्यन्ती उचितमनुचितं च कुर्वन्ती जीवनं यापितवती । एकदा तेन विश्वामित्रस्य तपोभङ्गाय नियुक्ता मर्त्यलोकं प्रेषिता । ऋषिमवलोक्य मया निर्णीतं यद् वस्तुतः मया नर्तकीजीवनं विहाय ऋषिरयं पतिरूपेण वरणीयः । सः अपि मां स्वीकृतवान् सहर्षम् । आवां बहून् रमणीयान् दिवसान् सुखदाः यामिनीश्च यापितवन्तौ । परं कतिपयमासपूर्वं यदाहं तं कथितवती यत् **अहमन्तर्वत्नी जाता तथा आवयोः प्रेमप्रतीकं शिशुम् उत्सङ्गे लालयितुमुत्सुका अस्मि** इति तदैव क्रोधितो भूत्वा सोऽकथयत्—**त्वया दुष्टया मम तपोभङ्गः कृतः । नाहं गृहस्थो भवितुमिच्छामि । न च त्वां पत्नीरूपेण स्वीकरोमि । गच्छ इन्द्रलोकम् । भजस्व स्वगणि- कावृत्तिम् इति** । मया रुदत्या स बहुशः प्रार्थितः **यत् अहम् इन्द्रलोकवैभवं नहि कामये अहं केवलं जीवनपथे सहयात्रिणं पतिं, पत्न्यधिकारं, मातृत्वं च कामये इति** । परं मम निवेदनं तिरस्कृत्य सः कुत्रापि गतः ।

कण्वः—श्रुतमिदम् । कथयतु अग्रतः ।

मेनका—भगवन् पुत्रीं प्रसूय अहं प्रमुदिता अस्मि । अहं तु इन्द्रसभां गमिष्यामि परं मम आश्रयः अस्याः कृते पराधीनतायाः शृङ्खला भविष्यति इति शङ्के ।

गौतमी—कीदृशी इयं शङ्का ?

मेनका—भगिनि ! मयेव अनयापि जयन्तस्याधिपत्ये केवलं गायन्त्या नृत्यन्त्या जीवनं नहि यापनीयम् । मम दुहिता मत्पथानुगामिनी नहि भवेत् । तया प्राप्तव्यं गृहमेकं, पतिरेकः ।

कण्वः—अथ किम्, शोभनः विचारः ।

मेनका—**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्** इति श्रुतिवाक्यं विचिन्त्य आगता अस्मि गुरुकुलद्वारि । सुप्रसिद्धे अस्मिन् गुरुकुले भवदाश्रये शिक्षां प्राप्य इयं विदुषी सर्वगुणसम्पन्ना च भूयादिति मे स्पृहा ।

कण्वः—परमतिलघ्वीयं बालिका ।

गौतमी—भगवन् । अलं चिन्तया । इदानीमेव इयं बालिका मया पुत्रिकारूपेण स्वीकृता । षण्मासानन्तरं मेनका इमामत्र आनेष्यति । तदनन्तरम् अहमेव एनां पालयिष्यामि । वने शकुन्तैः सह लालिता इयं शकुन्तलानामधेया भविष्यति । यथा मे अनसूया तथैव शकुन्तला भविष्यति ।

मेनका—अनुगृहीता अस्मि ।

गौतमी—भगिनि मेनके ! एकः प्रतिबन्धः त्वया अपि स्वीकरणीयः । बालिकाया ब्रह्मचर्यकाले त्वया कदापि गुरुकुलमिदं नहि प्रवेष्टव्यम् ।

मेनका—स्वीकृतः प्रतिबन्धः ।

कण्वः—गच्छ पुनरागमनाय एकवारम् । षण्मासानन्तरम् अत्र एव बालिकायाः कर्णवेधनसंस्कारम् अन्नप्राशनसंस्कारं च विधास्यामः ।

मेनका—तथास्तु भगवन् ।

इन्द्रलोकोपवनम्

चतुर्थं दृश्यम्

मेनका—सानुमति ! स्वागतम् । वीक्षितं महर्षिकण्वस्य गुरुकुलम्, शकुन्तलाम् अधिकृत्य प्राप्ता काचित् सूचना त्वया ? मया तु स्वहृदयं पाषाणीकृत्य बहूनि वर्षाणि यापितानि तस्या वियोगे ।

सानुमती—आम् । न केवलं वीक्षितम् अपितु सम्यग् निरीक्षितम् । दुहिता ते बाल्यमवतीर्य कैशोर्यमाप्ता । रूपसौन्दर्ये तु सा तव प्रतिकृतिः एव । सैव देहयष्टिः, सैव दृष्टिः, तदेव स्मितं तदेव च हास्यं तदेव रूपलावण्यञ्च । नभसः अवतीर्णा गङ्गेव सा निर्मला भाति ।

मेनका—अहं तु तस्या व्यवहार ज्ञानविषये विद्याध्ययनविषये च प्रगतिं ज्ञातुमिच्छामि । शास्त्रचिन्तने कलाशिक्षणे तस्याः कीदृशी अभिरुचिः वर्तते ?

सानुमती—गुरुकुले तु अनेके ब्रह्मचारिणः अध्ययनार्थं निवसन्ति । यथानियमं सर्वे यज्ञं कुर्वन्ति व्याकरणसाहित्यदर्शनादिशास्त्राणामध्ययनं च कुर्वन्ति । सर्वे सौहार्देन परस्परं भावयन्तः तत्र तिष्ठन्ति । शकुन्तलायाः सख्यौ अनसूयाप्रियंवदे तस्याः स्नेहपाशबद्धे सदैव तया सह विचरतः । ताभ्यां मया ज्ञातं यत् कुलगुरुभिः अतिथिसत्काराय व्यवहारनिपुणा शकुन्तला एव नियुक्ता । पादपलतावृक्षाणां संरक्षणकार्यं तु तस्यै अतीव रोचते इति ।

मेनका—आश्वस्ता अस्मि वृत्तान्तम् इदं श्रुत्वा ।

सानुमती—पादपानामालवालपूरणे सा स्वयमपि लतेव प्रतिभाति । स्वसखीभिः सह नवमालिकायाः सहकारवृक्षेण सह विवाहोत्सवं मानयन्ती गायन्ती सा इन्द्रलोकस्य अप्सरसः अतिशेते ।

मेनका—हीनोपमानम् इदम् । इन्द्रलोकस्य अप्सरसः तु वैभवक्रीताः पराधीनता-शृङ्खलाबद्धा दास्य एव ! दुहिता मे स्वतन्त्रे वातावरणे स्वव्यक्तित्वस्य विकासम् आप्नुयात् एतदर्थमेव मया सा निजवक्षः स्थलात् दूरे निहिता । सखि जानासि किं यत् जनन्याः कृते स्वशिशोः त्यागः कियान् कष्टकरः भवति ? स्वजीवनात् स्वश्वसिताद् अपि प्रियतरं विहाय कियान् कठिनः प्रस्तरभारः तस्याः हृदि आपतति ।

सानुमती—सम्यग् अवैमि ! तव मातृहृदयस्य पीडामपि जाने परं दुहित्रे यद् अभि-लषितं तद् एव सम्पत्स्यते इति सन्तोषावहम् । शकुन्तलामधिकृत्य कापि चिन्ता न कर्तव्या । गुरुकुले तया कण्वस्य पितृस्नेहः अपि प्राप्तः गौतम्याः मातृवत्सलता अपि लब्धा । सखीभिः सह ज्ञानमर्जयन्ती सा यथाकाले कुलगुरुप्रतापेन अनुरूपं वरमपि प्राप्स्यति एव !

मेनका—सत्यं वदसि !तथापि काले-काले चिन्तामग्ना भवामि ! **पापशङ्की अति-स्नेहः** । सखि आगामिनि वर्षे अपि त्वया तत्र गत्वा दुहितुः मे वृत्तान्तः ज्ञातव्यः, मह्यं च श्रावयितव्यः ।

सानुमती—अथ किम् ।

पञ्चमं दृश्यम्

मेनका—शकुन्तलाया वार्तां प्राप्य सानुमती अद्यावधि नहि आगता । तां प्रतीक्षमाणा दिनानि, वर्षाणि इव यापयामि । (द्वारि खट् खट् इति ध्वनिः श्रूयते) सम्भाव्यते आगता सैव । सानुमति ! आगम्यताम् ।

शारद्वतः—अहमस्मि महर्षेः कण्वस्य शिष्यः भगिनीशकुन्तलायाः सहपाठी शारद्वतो नाम ब्रह्मचारी ।

मेनका—आगम्यताम् उपविशतु अत्रभवान् अस्मिन् आसने । किं शकुन्तलायाः शिक्षाकालः सम्पूर्णः जातः ? महर्षिणा कः सन्देशः मह्यं प्रेषितः ? किं तस्या विवाहस्य मङ्गलावसरः समुपस्थितः यत्र अहमपि निमन्त्रिता ?

शारद्वतः—मातः ! अहं तु भवत्याः सख्या सानुमत्या भवत्सकाशं प्रेषितःअस्मि । सा तु शकुन्तलां नीत्वा मारीचाश्रमं गता । भवती अपि तत्र आहूता विशेष-कार्याय ।

मेनका—शकुन्तलायाः का वार्ता ?

शारद्वतः—अनभिधेयं कथयितुं न शक्यते ।

मेनका—विपद्गता मे दुहिता इति स्पष्टम् । मुनिवर ! पाषाणहृदया अहं सर्वं श्रोतुमीहे ।

शारद्वतः—श्रूयताम् । कतिपयमासपूर्वं हस्तिनापुराधीशः मृगयाविहारी सम्राट् दुष्यन्तः महर्षेः अनुपस्थितौ तपोवनम् आगतः । स तत्र कतिपयदिवसान् अतिष्ठत् । अतिथिसत्काराय नियुक्ता शकुन्तला स्वसखीभिः सह तं पर्यचरत् । तेन वञ्चकेन न महर्षिः पृष्टः न च गौतमी, स्वयमेव गान्धर्व-विधिना शकुन्तला व्यूढा । शीघ्रमेव त्वां हस्तिनापुरम् आनेतुं राजपुरुषं **प्रेषयिष्यामि** इति कथयित्वा सः स्वराजधानीं गतः परं कमपि नहि प्रेषितवान् ।

मेनका—अहो ! वञ्चिता मे दुहिता नागरपथानभ्यस्ता ।

शारद्वतः—कतिपयमासानन्तरं यदा स लेखमात्रमपि नहि प्रेषितवान् तदा महर्षिः गर्भवतीं शकुन्तलां पतिगृहं प्रापय इति गौतमीं मां शार्ङ्गरवं च आदिष्टवान् ।

मेनका—ततः किं घटितम् ?

शारद्वतः—राजसभां प्रविश्य अस्माभिः गुरोः सन्देशः कथितः परं दुष्यन्तः शकुन्तलाया विषये स्वानभिज्ञतामेव प्रदर्शितवान् । **अत्रभवती मया परिणीतपूर्वा इति नहि जानेऽहम्** इत्युक्त्वा तेन दुष्टवचनैःतिरस्कृता विमानिता अस्मद् भगिनी ।

मेनका—अहो ! कुसुमेभ्यः प्रसारितौ करौ कण्टकैर्विद्धौ । मद्भाग्यविपर्ययादेव सर्वं प्रतिकूलं जातम् ।

शारद्वतः—भृशं रुदती क्रन्दती शकुन्तला गुरुकुलं गन्तुम् उद्यता न आसीत् तदैव भवत्याः सखी सानुमती तत्र आगता । तया शकुन्तला समाश्वस्ता मारीचाश्रमं च नीता । तया एव अहम् एवम् आदिष्टः—**गच्छ इन्द्रलोकम्** इति । तत्र मेनकायै सर्वं वृत्तान्तं विनिवेद्य सूचयितव्यं यत् सम्राट् दुष्यन्तःइन्द्रस्य तत्पुत्रजयन्तस्य च सखा अस्ति । तयोः माध्यमेन कश्चिद् उपायः चिन्तनीयः येन दुष्यन्तः स्वक्रौर्यमपराधं च विज्ञाय शकुन्तलां स्वीकरोतु । दुहितृवत्सला अत्रभवती एव कार्यमिदं सम्पादयितुं क्षमा ।

मेनका—अवसादवशीकृतापि करणीयं करिष्ये । गच्छतु भवान् । अहमपि यथाशीघ्रं मारीचाश्रमं गमिष्यामि ।

षष्ठं दृश्यम्

मेनका—सर्वदमन ! सर्वदमन ! कुत्र असि ?

सर्वदमनः—अयमागतःमातामहि ! देहि मे नवीनं क्रीडनकं तर्हि नवीनां वार्तां श्रावयामि ।

मेनका—चपलोऽसि वत्स ! दास्यामि क्रीडनकम् । कास्ति नवीना वार्ता ?

सर्वदमन—मातामहि ! अद्य मम तातः अत्र आगतः । मया एव सर्वप्रथमं सः दृष्टः ।

मेनका—सत्यं किं वत्स !

सर्वदमनः—अथ किम् । सिंहशावकैः सह क्रीडता मया तु नहि ज्ञातं कदा सःमां निकषा अतिष्ठत् कदा च मम रक्षासूत्रं भूमौ पतितम् इति ।

मेनका—किं सः तत् रक्षासूत्रं गृहीतवान् ।

सर्वदर्मनः—आम् ।

मेनका—किं सा औषधिः प्रकृतिस्था एव आसीत् ।

सर्वदमनः—अथ किम् ।

मेनका—अहो सौभाग्यमस्माकम् ।

सर्वदमनः—यदा मया सः कथितः मम माता शकुन्तला मम तातः दुष्यन्तः च द्वौ एव एतत् रक्षासूत्रं ग्रहीतुं शक्नुतः तदा सः सोल्लासः बाष्पकण्ठः—वत्स वत्स इति मन्त्रयन् माम् आलिङ्गितवान् ।

मेनका—ततः किम् ?

सर्वदमनः—तदनन्तरं सः मया सह मातुः समीपं गतःक्षमस्व मम अपराधं इति कथयन् तस्याः चरणयोःपतितः ।

मेनका—आश्चर्यम् !

सर्वदमनः—मातामहि ! तातेन कः अपराधः कृतः ?

मेनका—वत्स ! ज्ञास्यसि पितुः सकाशात् । इदानीं तौ कुत्र स्तः ?

सर्वदमनः—महर्षिं निकषा उपविष्टौ उपदेशं शृणुतः । अहं धावित्वा तव समीपमागतः ।

मेनका—गच्छ त्वमपि पित्रोः सकाशम् । अहं दुहितृगमनकालोचितानि मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि ।

सर्वदमनः—मम क्रीडनकं नहि विस्मरिष्यसि ।

मेनका—वत्स, नहि विस्मरिष्यामि । अद्य तु विधात्रा मम मनोरथः अभिनन्दितः । हे ईश ! कृतार्थं जातं मम जीवनमद्य । जीवनस्य प्रत्यूषे मया दुहित्रे यद् अभिलषितं जीवनस्य सन्ध्यायां मम दुहित्रा तत्प्राप्तम्, पत्युः प्रेम, गृहिणीपदं, सफलं मातृत्वम् । सन्तुष्टायां तस्यां सफलं मम मातृत्वं सफलं च मम वात्सल्यम् ।

॥ समाप्तमिदं मेनकावात्सल्यम् ॥

अपूर्वः प्रतिशोधः

कथासार

इस रूपक में महाभारत युद्ध के अन्तिम चरण की एक मर्मस्पर्शिनी घटना अंकित है। पाण्डवों की विजय लगभग सुनिश्चित हो चुकी है। द्रौपदी के अपमान का बदला दुर्योधन के ऊरुभङ्ग तथा दुःशासन वध द्वारा लिया गया है। अभिमन्यु के वध के प्रतिशोध में जयद्रथ, वृषसेन और कर्ण मारे गये हैं। तभी अश्वत्थामा अपने पिता द्रोण के वध का प्रतिशोध द्रौपदी के दोनों भाइयों और पाँचों पुत्रों को मार कर लेता है। द्रौपदी के क्रोध की ज्वाला भड़क उठी है। उसके उद्बोधन पर भीम, अर्जुन और नकुल, अश्वत्थामा को जीवित पकड़ कर लाते हैं ताकि द्रौपदी के समक्ष उस का वध किया जा सके। द्रौपदी द्रोणाचार्य की पत्नी कृपी का ध्यान कर कहती है कि मेरी तरह गुरुपत्नी की गोद सूनी मत करो। पश्चात्ताप में डूबा अश्वत्थामा इस अपूर्व प्रतिशोध से चकित हो जाता है। **प्रतिहिंसा से हिंसा नहीं मिटती यही इस रूपक का सन्देश है।**

प्रथम दृश्य में द्रौपदी के भाइयों और पाँचों पुत्रों की हत्या कर के प्रसन्न हुआ अश्वत्थामा इस प्रतिशोध की सूचना दुर्योधन तक पहुँचाने जा रहा है। उसे सन्तोष है कि जिस प्रकार युधिष्ठिर ने असत्य बोल कर छल से उस के पिता की हत्या करवा दी थी उसी प्रकार उस ने भी सोते हुए पाण्डवपुत्रों पर आक्रमण कर उन्हें मृत्यु की नींद सुला दिया है। अब पाण्डव आँसुओं से भीगी विजय ही प्राप्त करेंगे। ऊरुभङ्ग के पश्चात् मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए दुर्योधन के पास वह शीघ्र पहुँचना चाहता है ताकि इस प्रतिशोधवृत्तान्त को सुन कर वह सुख से स्वर्ग जा सके।

द्वितीय दृश्य में द्रौपदी विजयपर्व की सूचना पाने की प्रतीक्षा में बैठी है। नकुल को द्वार पर देख कर वह सोचती है कि उस की वेणी के शृङ्गार का अवसर आ पहुँचा है। नकुल उसे युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम के आने की पूर्व सूचना देते हैं। नकुल के चेहरे पर उदासी देख कर द्रौपदी सोचती है कि आखिर कौरव भी तो अपने भाई थे सम्भवतः इसीलिए नकुल शोकग्रस्त है। द्रौपदी धर्मराज, भीम, अर्जुन, सहदेव सभी का कुशल मंगल पूछती है। इन सब की कुशलता बता कर नकुल आगे की दुःखद सूचना देने की हिम्मत नहीं बटोर पाते। तभी कृष्ण आकर द्रौपदी को उस के भाइयों (धृष्टद्युम्न और शिखण्डी) तथा पाँचों पुत्रों की हत्या की खबर देते हैं। द्रौपदी विश्वास नहीं कर पाती कि पाँचों पराक्रमी पाण्डव अपने बच्चों की रक्षा नहीं कर पाये। क्या वे सब पौरुषहीन हो गये हैं, क्या उनके शस्त्र केवल शोभा के लिए हैं? द्रौपदी को सान्त्वना देने का प्रयास करते हुए अर्जुन बताते हैं कि हत्यारे ने युद्ध के नियमों का उल्लंघन करके निश्चिन्त सो रहे हमारे कुलदीपकों को छल से मारा है। युधिष्ठिर जब यह बताते हैं कि वह हत्यारा अर्धरात्रि के अन्धकार में कुकृत्य कर के भाग गया है तो वह क्रोध से आग बबूला हो उठती है। वह ब्राह्मण पुत्र अश्वत्थामा है तो क्या हुआ? पापी का कोई धर्म नहीं होता, जाति या वर्ण नहीं होता वह तो केवल पापी होता है और उसे दण्डित करना चाहिए। उद्विग्न हुई वह भीम से प्रार्थना करती है कि वह ही उस नरपशु को पकड़ कर लाये। विराटगृह में भी तो उसी ने पापी कीचक का वध करके मुझ द्रौपदी को बचाया था। मैं जीना नहीं चाहती पर बदला लिए बिना शान्ति से मर भी नहीं सकती। श्रीकृष्ण के सुझाव पर भीम और नकुल अश्वत्थामा की खोज के लिए चले जाते हैं। कृष्ण, अर्जुन को भी उन की सहायता के लिए भेज देते हैं और स्वयं वीरों के दाहसंस्कार की व्यवस्था देखने चले जाते हैं।

तृतीय दृश्य में द्रौपदी युधिष्ठिर की उपस्थिति में विलाप कर रही है कि उस के बच्चों ने दुःख भोगने को ही जन्म लिया था। तेरह वर्ष के वनवास के कारण उन्हें बचपन में भी मां की गोदी में खेलना नसीब न हुआ। निष्फल हुआ द्रौपदी का मातृत्व और पोते पोतियों को गोद में खिलाने के सब सपने टूट गये। उस के

हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही है । युधिष्ठिर उसे समझाते हैं कि **हिंसा प्रतिहिंसा की परम्परा चलती रहती है तो विनाश कहीं नहीं रुकता** । अभिमन्यु के वध के पश्चात् क्या अर्जुन ने कर्ण के सामने ही उस के पुत्र वृषसेन को नहीं मार दिया था ? **युद्ध में एक वज्रपात दूसरा वज्रपात कराता है** एक आतंक दूसरे आतंक को जन्म देता है । **आतंकवाद की आग में कोई भी सुरक्षित नहीं रहता** । बूढ़े जवान बच्चे स्त्रियां सभी उस की चपेट में आ जाते हैं । द्रौपदी पर इन तर्कों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । उसके नेत्रों से प्रतिशोध की प्रखर अग्नि निकल रही है । वह युधिष्ठिर की शान्ति नीति को ही परिवार के कष्टों का कारण मानती है ।

तभी भीम, अर्जुन, नकुल तथा कृष्ण बँधे हुए अश्वत्थामा को लाते हैं । अश्वत्थामा कहता है—मैंने अपने पिता की हत्या का बदला ले लिया है । श्रुतसेन की माँ द्रौपदी याज्ञसेनी ! जैसे मैंने तुम्हारे पाँच पुत्रों की हत्या कर तुम्हें पुत्र विहीना बना दिया है वैसे ही तुम मेरी मां को पुत्रविहीना बना कर बदला ले लो । मेरे वध का आदेश दो । पल भर के लिए विचारमग्न होकर द्रौपदी कहती है कि नहीं, नहीं, गुरुपत्नी पुत्रविहीना नहीं की जाएगी । द्रौपदी फूट पड़ती है—माधव ! कितनी कठिनाइयों से पाला था उस माँ ने इकलौते बेटे को । दूध की जगह चावलों की माँड पिलाते हुए कितनी पीड़ा झेली थी उस माँ ने ! क्या मैं इतनी पाषाणहृदया हूँ जो उस माँ की गोद सूनी कर दूँ ? मैं उसके इस बच्चे को अभयदान देती हूँ । मेरी तरह कोई माँ इस युग में पुत्र विहीना न हो । इस अद्भुत क्षमा दान को देख कर अश्वत्थामा कहता है—माँ मुझे दण्ड दो अन्यथा जीवन भर मैं पश्चात्ताप की आग में जलता रहूँगा । मुझे क्षमा मत करो प्रतिशोध की विधि पूरी करो । द्रौपदी उत्तर देती है कि **तुमने मुझे माँ कह कर पुकारा है बस इसी सम्बोधन से मेरा प्रतिशोध पूरा हो गया है** ।

पुरन्ध्रीपञ्चके द्वितीयं रूपकम्

अपूर्वः प्रतिशोधः

प्रथमं दृश्यम्

(पाञ्चालानां द्रौपदेयानां च वधानन्तरं प्रहृष्टः अश्वत्थामा प्रविशति)

अश्वत्थामा—(स्वागतम्) सफलं मे जीवनं द्रोणपुत्रस्य । **शठे शाठ्यं समाचरेत्** इति वचनं स्वीकृत्य अद्य मया सौप्तिकवधेन-शत्रवः हताः । सत्यवादिना धर्मराजेन असत्यम् उक्त्वा मे पिता यमसदनं प्रापितः । मयापि कृतं प्रतिकृतम् । रात्रौ शिविरं प्रविश्य सर्वे द्रौपदेया हताः, सर्वे पाञ्चाला निहताः । हतपुत्राः पाण्डवाः अश्रुभिः सिक्तं विजयं प्राप्नुवन्तु । क्षौमावदाते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते शयने शयानः धृष्टद्युम्नः यदा मया पादप्रहारेण प्रबोधितः तदा स निद्रयाविष्टःकिञ्चिदपि चेष्टितुं नाशक्नोत् । **शस्त्रेण मां जहि शस्त्रेण मां जहि** इति प्रार्थयमानं तम् अहं पादाष्ठीनैः अमारयम् । पितुः हत्यायाः प्रतिकारः मया सम्पादितः ।

अहो प्रसन्नोऽस्मि सन्तुष्टोऽस्मि प्रतिशोधं कृत्वा, प्रतिहिंसां सम्पाद्य । धिग् युधिष्ठिरं धिक् वृकोदरं, धिक् पार्थं, धिङ्नकुलसहदेवौ । तेषां पुत्रा अर्धसुप्तावस्थायां मया लीलयैव निहताः । प्रतिविन्ध्यस्तु कुक्षिदेशे हतः, सुतसोमस्य बाहू छिन्नौ तदनन्तरं हतकः शतानीकः वक्षसि हतः, श्रुतकर्मा आस्ये आहतः, श्रुतकीर्तेः सकुण्डलं शिरः छिन्नम् । कीदृशं दृश्यमासीत् ? केचित् वीराः सुप्ता एव यमसदनं गताः । अन्ये निद्रार्ता भयार्ताश्च इतस्ततः व्यधावन्त । रात्र्यन्धकारे परस्परं नाभ्यजानन्तः परस्परं प्राहरन् । पितरः पुत्रान् भ्रातरः भ्रातृजनान् न प्रत्यभ्यजानन् । केचित् परस्परं हतवन्तः

अन्ये मया निहताः । अद्य मम प्रतिशोधज्वाला परमां शान्तिं गता । अधुना मया शीघ्रमेव राजानं कुरुश्रेष्ठं सुयोधनं प्रति गन्तव्यम् । भीमसेनेन गदया तस्य सक्थिनी निर्भग्ने । ऊरुभङ्गमवाप्य मृत्युं प्रतीक्षमाणः सः यदि जीवति इदानीं यावत् तदा तु सुखकरीम् इमां प्रतिविधिं श्रुत्वा सुखेन स्वर्गं यास्यति । गच्छामि तत्समीपम् ।

द्वितीयं दृश्यम्

(ठक् ठक् इति ध्वनिः श्रूयते)

द्रौपदी—कोऽस्ति द्वारे

(ठक् ठक् ठक् इति पुनः श्रूयते)

द्रौपदी—किमर्थं न भाषते ? कोऽस्ति ?

नकुलः— अहमस्मि नकुलः । पाञ्चालि ! द्वारम् अपावृणु ।

द्रौपदी— आगच्छतु अभ्यन्तरम् । ह्यः सन्ध्यायां चरेण विजयसूचना प्रदत्ता । सौभाग्येन मम वेणीशृङ्गारस्य अवसरः सम्प्राप्तः । विजयोल्लासस्य अवसरेऽस्मिन् पुत्रविहीनायाः सुभद्रायाः व्यथा मां विचलितां करोति । सिंहशावकः अभिमन्युः अभूतपूर्वां वीरतां प्रदर्श्य वीरगतिं प्राप्तः । कथं विस्मरिष्यामः वीरं सौभद्रम् अस्मिन् विजयावसरे ? आर्य नकुल ! किमन्ये तव भ्रातरोऽपि विजयोल्लासं प्रदर्शयितुम् आगमिष्यन्ति मत्समीपम् ?

नकुलः— आम् । परं—परम्

द्रौपदी—परं किम् ? भवतः वदने प्रसन्नता न दृश्यते । जानेऽहं कौरवाणां नाशोऽपि न सुखावहः भवतां कृते । तेऽपि भ्रातरः एव आसन् । **युद्धस्य परिणतिः तु विनाश एव, एकपक्षस्य वा द्वितीयपक्षस्य वा** । किं वा मन्यते भवान् ?

नकुलः—सत्यं वदसि पाञ्चालि ! अस्माकं विजयस्तु पराजये परिणतः । कथं कथयेयम् ?

द्रौपदी—स्पष्टं किं न वदति भवान्? धर्मराजस्तु कुशली?

नकुलः—अथ किम्। आगच्छति एव ज्येष्ठभ्राता अत्र।

द्रौपदी—आर्यस्य भीमस्य का वार्ता?

नकुलः—कुशली सः अपि।

द्रौपदी—सव्यसाची कुशली किम्?

नकुलः—आगच्छति सः अपि अत्र।

द्रौपदी—आर्यः सहदेवः?

नकुलः—कुशली सः। प्रेषितः ज्येष्ठभ्रात्रा।

द्रौपदी—भवान् अभ्यन्तरम् आगत्य मम पूजां स्वीकरोतु, मत्कृते सन्देशमपि वितरतु।

नकुलः—प्रेषितोऽहं सूचनार्थम्, परं किमपि वक्तुं न समर्थोऽस्मि। पश्यतु! तत्र आगच्छति धर्मराजेन सह योगिराजः श्रीकृष्णः। स एव दुःखदं वृत्तान्तं कथयिष्यति।

द्रौपदी—कीदृशी प्रहेलिका उपस्थाप्यते? महाराजस्य अभिषेकावसरे कापि बाधा उपस्थिता किम्? किं पुनः द्यूतक्रीडायां वयं पणीकृताः? शकुनिस्तु मम सुकुमारवत्सैः यमसदनं प्रेषितः। कोऽन्यः छलेन महाराजं पराजेतुं शक्नोति। अहो माधव! नमस्ते। ते सखी अहं द्वारि स्वागतार्थं तिष्ठामि। सुखदं दुःखदं वा वृत्तान्तं श्रोतुं सन्नद्धा अस्मि।

कृष्णः—आम्। नास्ति मत्समीपे आह्लादकरी सूचना। धैर्यं धृत्वा सावधानं शृणु। पितुःकुले ते धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च न जीवतः।

द्रौपदी—हा हा मम भ्रातरौ! किं घटितं युवाभ्याम्?

कृष्णः—धैर्यं धारय पाञ्चालि! त्वं वीरभगिनी असि वीरप्रसविनी असि। पुत्रस्ते प्रतिविन्ध्यः वीरगतिं प्राप्तः।

द्रौपदी—हा वत्स हा पुत्र इयत्प्रियं ते मातुलसाहचर्यं यत् ताभ्यां सह एव स्वर्गं गतः ।

कृष्णः—द्रुपदसुते ! सहस्व वज्रपातम् । वीरपुत्रास्ते श्रुतकर्मा, श्रुतकीर्तिः, शतानीकः, सुतसोमः सर्वे एव—-

द्रौपदी—वीरगतिं प्राप्ताः किम् ? नहि नहि असत्यमिदम् । असम्भवमिदम् । किं धर्मराजः युधिष्ठिरः अप्रतिमः धनुर्धरः अर्जुनः, महाबलिष्ठः भीमः वीरौ नकुलसहदेवौ सर्वे मम वत्सान् रक्षितुं न पारयन्ति ? माधव ! कीदृशः उपहासः अयम् ?

कृष्णः—सखि ! **कटुयथार्थस्य स्वीकरणं कठिनं भवति** । धर्मराज ! युधिष्ठिर ! भीम ! अर्जुन ! यूयं किमर्थं स्तम्भान्तर्हिताः मौनिनः तिष्ठथ ? समाश्वासयथ वराकीं द्रौपदीम् । **अहो बलवान् कर्मविपाकः** । सुभद्रा इव पाञ्चाली अपि पुत्रविरहिता जाता ।

युधिष्ठिरः—द्रौपदि ! कथं समाश्वासयामि त्वाम् ? रणक्षेत्रे विजित्य अपि पराजिताः वयम् । आत्मग्लानिवारिधौ निमग्नाः स्मः, पश्चात्तापाग्नौ दग्धाः स्मः ।

अर्जुनः—प्रिये ! अभिमन्योः वधस्य व्यथा पुनर्नवीकृता । भ्रातरः सर्वे सङ्गताः स्वर्गे उपहसिष्यन्ति अस्माकं पौरुषम् ।

कृष्णः—पार्थ सखे ! यदि त्वं स्वयमेव विचलितो भविष्यसि तदा तु द्रौपदीं कथं समाश्वासयिष्यसि ?

द्रौपदी—माधव किं सत्यमेव अहं पुत्रविहीना सञ्जाता ? माधव ! किं सत्यमेव मम सर्वस्वम् अपहृतम् ? केन मारिताः कथं मारिताः मम सिंहशावकाः ? धिक् सर्वान् मम पतीन् पाण्डुपुत्रान् येषु जीवितेषु शत्रुभिःमम वत्साः निहताः । किं सर्वे पाण्डवाः पौरुषहीनाः पराक्रमहीनाः सञ्जाताः । किं तेषां शस्त्राणि अलङ्करणायैव शोभन्ते न तु रक्ष्याणां रक्षणाय ? अहमेव मन्दभागिनी अपराधिनी अस्मि यया स्वपुत्राः सुकुमाराः बलरहितानां पितृजनानां संरक्षणे निहिताः । यद्यहम् अज्ञास्यम् एषाम् ईदृशीं विवशतां कातरतां तदा तु स्वयमेव निजवत्सानां रक्षार्थं शस्त्रधारिणी अभविष्यम् ।

अर्जुनः—प्रिये रात्रौ शिविरे विश्वस्ताः सुप्ताः एव अस्माकं कुलदीपकाः आक्रान्ता निहताश्च अन्यथा ते वीरपुत्राः रणक्षेत्रे इन्द्रेण अपि पराजेतुं न शक्याः । युद्धनियमान् सर्वथा समुल्लङ्घ्य शत्रुणा इदं घोरं दुष्कृत्यं कृतम् ।

युधिष्ठिरः—पाञ्चालि ! भ्रातरौ पुत्राश्च ते छलेन निहता न तु रणक्षेत्रे पराजिताः ।

द्रौपदी—कः अस्ति सः नीचक्षत्रियः येन क्षत्रियधर्मं परित्यज्य इदं कुकर्म कृतं स्वकृते च नरकद्वारम् अपावृतम् ?

युधिष्ठिरः—न तु क्षत्रियः अपि तु जन्मना ब्राह्मणः सः ।

द्रौपदी—ईदृशं घोरं कर्म येन कृतं सः कथं ब्राह्मणः ? तेन तु उन्मत्तेन मदमत्तेन पिशाचेन भवितव्यम् । बालघाती सः पापी भवद्भिः खण्डखण्डीकृतः न वा ?

युधिष्ठिरः—रात्र्याः अन्धकारे कुकर्म कृत्वा स चौर इव पलायितः ।

द्रौपदी—कथं पलायितुं शक्तः सः ? ईदृशी अस्ति भवतां शिविराणां रक्षा-व्यवस्था ? शिविररक्षापुरुषाः सुरां पीत्वा निद्रामग्ना भवन्ति किम् ? यदि सः उन्मत्तः बालघाती जीविष्यति तर्हि तु कतिपयदिनैः एव न जाने कति निर्दोषाः नराः, नार्यः बालाश्च मृत्युमुखं यास्यन्ति । मत्समक्षं किमर्थम् आगता अत्रभवन्तः सर्वे ? गम्यताम् । शृङ्खलाबद्धः सः दुष्टः अपराधी मत्समक्षम् आनेतव्यः । अहं वाञ्छामि पुत्रवधस्य प्रतिकारं प्रतिशोधम् । दुष्टस्य हस्तौ खड्गेन छेत्तव्यौ, शिरः खण्डीकर्तव्यम् । छिन्नहस्तः छिन्न-पादः भिन्नसक्थः स पशुमारं मारयितव्यः ।

युधिष्ठिरः—शान्तं शान्तम् द्रौपदि ! बालघातिनं नहि जानासि त्वम् । स तु गुरुपुत्रः ब्राह्मणः अश्वत्थामा । स कथमस्माभिः हन्तव्यः ? ब्राह्मणवधो नास्ति क्षत्रियाणां धर्मः ।

द्रौपदी—धर्मज्ञ ! धर्मराज ! कीदृशः धर्मः अयं यः निर्दोषाणां बालानां हन्तारं ब्राह्मणं मन्यते तं बालघातिनं दण्डयितुं च नानुमन्यते । अहं न मन्ये अश्वत्थामानं ब्राह्मणपदप्रतिष्ठितम् । **पापिनः अपराधिनःकोऽपि वर्णः कापि जातिः न**

भवति । सः तु केवलं दुष्टः अपराधी दण्ड्यः ।भवतां क्षत्रियधर्मं तु सम्यक् जानामि । कुत्र आसीत् सः क्षत्रियधर्मः यदा भवान् कर्णस्य शरैः आकुलीभूय रणक्षेत्रात् स्वशिविरं प्रति पलायितः ? आर्यपुत्र ! भवतां धर्मोपदेशं श्रोतुमवगन्तुं च नास्मि अहं समर्था ।

कृष्णः—द्रुपदसुते ! धैर्यमवलम्बस्व । धर्मराज ! नास्ति कालोऽयं धर्मोपदेशस्य । द्रौपद्याः मातृहृदयव्यथा भवतः तर्कैः वर्धिष्यते एव । यस्याः सर्वस्वं सपदि विनष्टं तस्याः हृदयं सान्त्वयितुं उपायाश्चिन्तनीयाः ।

द्रौपदी—आर्य भीम ! मदीया आशा अत्रभवति एव वर्तते । विराटगृहे मयि आसक्तः कामोन्मत्तः दुष्टः कीचकः भवता एव यमसदनं प्रेषितः । भवतः ज्येष्ठभ्राता तु मां रक्षितुमसामर्थ्यं प्राकटयत् । पुत्रविहीना अहं जीवितुं न इच्छामि परं मरणात् पूर्वं तस्य नरपशोः वधः मया द्रष्टव्यः । प्रतिविधौ असम्पन्ने मरणमवाप्यापि शान्तिं न प्राप्स्यामि ।

अर्जुनः—दण्ड्यस्तु दण्डनीयः । वासुदेव ! भवान् किं मन्यते ?

कृष्णः—यथाहं चिन्तयामि अश्वत्थाम्नः ग्रहणे प्रयासः कर्तव्यः । भीम ! गच्छ त्वं कार्यमिदं सम्पादयितुम् । सम्भाव्यते सः म्रियमाणस्य दुर्योधनस्य समीपे गतः भवेत् ।

भीमः—आश्वस्ता भव पाञ्चालि, एषः गच्छामि । नकुलोऽपि मया सहं गच्छतु ।

नकुलः—बाढम्, अहमपि गच्छामि ।

कृष्णः—धर्मराज ! अश्वत्थाम्नः समीपे ब्रह्मास्त्रं वर्तते येन सः सम्पूर्णं देशं भस्मसात् कर्तुं शक्नोति । क्रोधान्धः सः किं करिष्यति इति न ज्ञायते । अर्जुनेनापि भीमस्य साहाय्यार्थं गन्तव्यम् । अर्जुन ! गच्छ त्वमपि । वयं सर्वे पाञ्चालीसदने प्रतीक्षामहे ।

द्रौपदी—आर्य भीम ! न विस्मरिष्यसि मम प्रतिहिंसाज्वालाम् । पुत्रहन्तारं दग्ध्वा एव शममेष्यति सा नान्यथा ।

युधिष्ठिरः—अर्जुन !जीवितः एव गुरुपुत्रः अत्र आनेतव्यः ।

अर्जुनः—अथ किम्। द्रौपद्याः समक्षम् उपस्थाप्यते सः अपराधी। साधयामः वयम्।

कृष्णः—धर्मराज ! पाञ्चालीं समाश्वास्य नयतु इमाम् अन्तः। वीरगतिं प्राप्तानां वीराणां दाहसंस्कारव्यवस्थादिकं समीक्ष्य अहं शीघ्रमेव प्रत्यागच्छामि।

द्रौपदी—माधव अहमपि स्ववत्सान् द्रष्टुं त्वया सह आगच्छामि।

कृष्णः—पाञ्चालि ! छिन्नानि शरीराणि प्रत्यभिज्ञानम् अपेक्षन्ते। कथमभिज्ञास्यसि यत्र तत्र विन्यस्तानि नररक्तावसिक्तानि अङ्गानि ? मेदोमज्जास्थिरक्तवसौघे न लिखितं वर्तते कस्य अस्ति मज्जा कस्य अस्ति रक्तम्? शिविरस्य घोरं दृश्यं द्रष्टुं न पारयिष्यसि त्वम्। प्रतीक्षस्व कञ्चित् कालम्। व्यवस्थानन्तरं गमिष्यसि पतिभिः सह पुत्राणां दाहसंस्कारं कर्तुम्। गच्छामि अहम्।

तृतीयं दृश्यम्

(पाञ्चालीसदनस्य कक्षे युधिष्ठिरः द्रौपदी च तिष्ठतः)

द्रौपदी—हा प्रतिविन्ध्य, हा सुतसोम ! हा श्रुतकीर्ते ! हा श्रुतकर्मन् ! हा शतानीक ! अस्मिन् जगति दुःखप्राप्त्यर्थमेव यूयं जाताः। त्रयोदशवर्षाणि यावत् मातृवियोगं पितृवियोगं सोढ्वा द्वारिकायां बाल्यं यापितवन्तः। मन्दभाग्या अहं स्वकराभ्यां युष्मान् भोजनमपि न दत्तवती। अज्ञातवासानन्तरं युष्मान् दृष्ट्वा मम हृदयं वात्सल्यपूरितं, नेत्रे स्नेहजलपूरिते अभवताम्। पुत्राः मे क्रोडे न क्रीडितवन्तः परं पौत्रान् स्वोत्सङ्गे लालयिष्यामि इति स्वप्नमग्ना आसम्। मनोरथा मे भग्नाः स्वप्ना मे छिन्नाः। युष्माभिः विरहिता कथं जीविष्यामि ? निष्फलं मम मातृत्वं, निष्फलं जीवनम् मे।

युधिष्ठिरः—धैर्यं धारय याज्ञसेनि। तव धैर्यं तु जगत्प्रसिद्धं वर्तते । त्वं वीरपुत्री, वीरभगिनी, वीरपत्नी, वीरमाता असि। यदि त्वं विकलीभूय एवं विल-

पसि तदा तु सामान्यनार्यः किं करिष्यन्ति ?

द्रौपदी—विवाहानन्तरं मया नानाकष्टानि भुक्तानि । नैकशः तिरस्कारः अनुभूतः परं बाला मे यौवनं प्राप्य अप्रतिमशूराः सन्तः मम तिरस्काराणां प्रतिविधिं करिष्यन्ति इति आशाबन्धः नानाकष्टेषु मां जीवितुं प्रैरयत्, दुःखवारिधिमुत्तरितुं च मां सोत्साहामकरोत् । अधुना स आशाबन्धः अपि त्रोटितो दुष्टेन । बालानामुज्ज्वलभविष्याशया यैः पक्षैः पक्षिणीव स्वप्नाकाशे उड्डीयमाना आसं ते एव कर्तिताः दुष्टेन अश्वत्थाम्ना ।

युधिष्ठिरः—वासुदेवेन कठिनकार्याय प्रेषिताः भीमार्जुन-नकुलाः न प्रत्यागताः । अश्वत्थामानम् अधिकृत्य वैरनिर्यातनं न सुकरम् ।

द्रौपदी—दुष्करकार्येभ्यः पलायनं कृत्वा अपि कुतः लभ्यते जीवने सुखं सौकर्यञ्च ? दुष्कर-युद्धनिवारणाय भवद्भिः पञ्चग्रामाणां भिक्षा दुर्योधनात् याचिता परं किं तेन भवद्याचना स्वीकृता ? अत्र भवता तु सदैव शान्त्यै प्रयासः कृतः । शान्त्यर्थं स्वाधिकारः अपि परित्यक्तः परं तदापि शान्तिः न परिलक्षिता । क्षमापूर्णया नीत्या भवतः सर्वे भ्रातरः पत्नी च कष्टसागरे निपातिताः परं भवद्धृदये क्रोधस्य अर्चिः प्रतिशोधस्य ज्वाला वा नैव दृश्यते ।

युधिष्ठिरः—हिंसा मे न रोचते अत एव शान्त्यर्थं सन्धिं कर्तुं वासुदेवः दुर्योधनसभां गतः ।

द्रौपदी—परं भवद्यत्ने निष्फले जाते हिंसाग्निः प्रज्वलितः यस्य तापं वयं सर्वे अनुभवामः ।

युधिष्ठिरः—हिंसायाः प्रतिहिंसा जायते । एवं प्रतिशोधपरम्परा निरन्तरं चलत्येव । अभिमन्योर्वधानन्तरं किमर्जुनेन कर्णस्य समक्षमेव तस्य पुत्रः वृषसेनः न मारितः ? युद्धे तु एको वज्रपातः द्वितीयं वज्रपातं जनयति । एकः आतङ्कः अन्यमातङ्कम् उत्पादयति । युद्धाग्नौ प्रज्ज्वलिते न कोऽपि सुरक्षितः । आबालवृद्धा नार्यः कुमार्यः सर्वे आतङ्कपीडिता भवन्ति युद्धे ।

(द्वारे खट् खट् इति ध्वनिः श्रूयते)

द्रौपदी—कोऽस्ति द्वारि ?

भीमः—वयं भीमार्जुननकुलाः ।

द्रौपदी—किं रिक्तहस्ताः प्रत्यागताः ?

अर्जुनः—द्वारं विवृत्य आखेटविषयं पश्य ।

द्रौपदी—(विवृत्य) कुत्रास्ति स दुष्टः बालघाती ?

भीमः—अयमस्ति निगडितः अपराधी ।

अर्जुनः—अयमस्ति सः पापिष्ठः येन युद्धनियमाः उल्लङ्घिताः ।

नकुलः—वद रे कोऽसि त्वम् ?

अश्वत्थामा—अहमस्मि द्रोणाचार्यपुत्रः अश्वत्थामा । पितुः हत्यायाः प्रतिकारं विधाय प्रसन्नोऽस्मि सन्तुष्टोऽस्मि ।

द्रौपदी—माधव ! त्वमपि आगतः । पश्य एनं नरपिशाचम् ! नीच ! अधम ! अधुनैव प्राप्स्यसि फलं बालहत्यायाः । ब्राह्मणकुले जन्म गृहीत्वा त्वया ब्राह्मणत्वं कलङ्कितम् ।

कृष्णः—धर्मराज युधिष्ठिर ! युद्धापराधी दण्डनीयः एव ।

अर्जुनः—सुखं शयानानामुपरि प्रहारं कृत्वा अनेन न केवलं कातरता प्रदर्शिता अपितु युद्धमर्यादा अपि भग्ना ।

अश्वत्थामा—अर्जुन ! युद्धमर्यादा तु त्वया रक्षिता यदा भूमौ रथचक्रम् उन्नयन्तम् अङ्गराजं कर्णं प्रति शरसन्धानं कृतम् । तदा तु वासुदेवकृष्णेन एव प्रेरितस्त्वं युद्धमर्यादाया उल्लङ्घनार्थम् ।

कृष्णः—अश्वत्थामन्, यन्नृशंसकृत्यं त्वया कृतं तत् तु इतिहासे अक्षम्यम् ।

भीमः—धर्मराज ! द्रौपदि ! वासुदेव ! आदिश्यतां केन विधिना दण्ड्योऽयं दुष्टः !

युधिष्ठिरः—ब्राह्मणोऽयं दण्डनीयः परं........

द्रौपदी—परं किम् ? नायं ब्राह्मणः ब्रह्मराक्षसोऽयं वस्तुतः च पापिनः अपराधिनः कोऽपि वर्णः न भवति ।

अश्वत्थामा—हे श्रुतसेनमातः याज्ञसेनि द्रौपदि ! यथेच्छं दण्डय मामश्वत्थामानम् । जहि मां शस्त्रेण अन्यथा वा । न बिभेमि मृत्योरहम् । देहि आज्ञाम् ।

भीमः—देहि आज्ञाम् ।

अर्जुनः—देहि आज्ञाम् ।

नकुलः—देहि आज्ञाम् ।

अश्वत्थामा—हे प्रतिविन्ध्यमातः ! भवत्याः पञ्च पुत्रान् हत्वा मया अत्रभवती पुत्रविहीना कृता । प्रतिकाररूपेण मां हत्वा मम माताऽपि पुत्रविहीना क्रियताम् । अयमेव प्रतिशोधविधिः ।

द्रौपदी—नहि, नहि, गुरुपत्नी पुत्रविहीना करिष्यते । (रोदिति)

कृष्णः—किं वदसि द्रौपदि !

द्रौपदी—माधव ! पुत्रविहीना अहं जाने मातृहृदयव्यथाम् । वराकी कृपी पूर्वमेव वैधव्यदुःखेन पीडिता । सुकोमलहृदया सा पुत्रशोकं कथं सहिष्यते ? निर्धनावस्थायां वराक्या स्वपुत्रः कथं पालितः इति सर्वे जानन्ति । यदा अयम् अश्वत्थामा शैशवे दुग्धपानाय अरोदीत् तदा वराकी दुग्धाभावे तण्डुलजलं पाययन्ती कियती विह्वला आसीत् ? नानाकष्टानि सोढ्वा तया स्वपुत्रः एकाकी पालितः । नाहमीदृशी पाषाणहृदया यत् तस्याः क्रोडात् एकमात्रं पुत्रमपहरेयम् ।

युधिष्ठिरः—प्रिये पाञ्चालि ! धन्यासि त्वम् । तव सुकोमलं मातृहृदयं प्रशंसनीयम् ।

कृष्णः—द्रौपदि ! किं बालघातिने अभयं प्रदास्यसि ?

द्रौपदी—आं माधव ! **जगति कापि अन्या माता अहमिव पुत्रविहीना न भवेत्** इति ददामि अभयं मातुः वत्साय ।

अर्जुनः—वृद्धा गुरुपत्नी महतः शोकसागरात् उत्तारिता त्वया, प्रिये याज्ञसेनि !

अश्वत्थामा—नहि नहि अहं न क्षन्तव्यः। अहं न क्षन्तव्यः। ब्रह्मतेजसः रुपयोगं कृत्वा मया जघन्यःअपराधः कृतः। दण्डनीयः अहम्। प्रतिशोधविधिः सम्पन्नः कर्तव्यः। मातः! प्रार्थयेऽहं त्वाम् दण्डय मां दण्डय माम् अन्यथा पश्चात्तापाग्नौ आजीवनं दह्येयम्।

द्रौपदी—मातः इति सम्बोधनेन सम्बोधिता अहं त्वया इत्येनेनैव प्रतिशोधो मे परिपूर्णोजातः।

॥ समाप्तोऽयम् अपूर्वः प्रतिशोधः ॥

मदालसा

कथासार

मार्कण्डेयपुराण में वर्णित मदालसा आख्यान के आधार पर लिखित यह रूपक भारतीय नारी का एक भव्य रूप उपस्थित करता है। धर्म, दर्शन, राजनीति आदि सभी विषयों में निष्णात मदालसा गन्धर्वराज विश्वावसु की पुत्री है। नारी को उचित सम्मान देने वाले राजकुमार ऋतध्वज से विवाह करके वह अपने पुत्रों को अपनी इच्छानुसार योगी, आयुर्वेदविशारद, दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ बनाती है। प्रसंगवश वनवासियों के बीच रहती हुई वह उन लोगों की संगीतशिक्षा आदि से सेवा करती है।

प्रथम दृश्य में मदालसा और उसकी सखी कुण्डला वार्तालाप करती दिखाई देती हैं। राजकुमार ऋतध्वज वृक्ष की ओट में खड़े हैं। कुण्डला गृहस्थाश्रम का महत्त्व बताकर मदालसा को विवाह के लिए प्रेरित कर रही है परन्तु मदालसा ब्रह्मवादिनी होकर अपना जीवन शिष्याओं के निर्माण में लगाना चाहती है। उस का तर्क है कि उस पत्नीपन का क्या लाभ जिसमें द्रौपदी जूए में हारी गई और शैव्या को भरे बाज़ार में चाण्डाल के हाथ बिकना पड़ा था। तभी नारी स्वाधीनता का समर्थक राजकुमार ऋतध्वज सामने आकर कहता है कि किसी एक पुरुष के अपराध के कारण सारी पुरुष जाति को दण्डित करना उचित नहीं। वह मदालसा के विचारों से प्रभावित होकर विवाह का प्रस्ताव रखता है जिसे मदालसा स्वीकार कर लेती है। सखी कुण्डला मदालसा को कहती है कि गृहस्थाश्रम को प्रयोगशाला मानकर अपने ज्ञान विज्ञान का प्रयोग वह वहीं करे। ऋतध्वज को वह बताती है कि पति को पत्नी का सम्मान करना चाहिए क्योंकि वह धर्म, अर्थ, काम इन

तीनों की सिद्धि में पति की सहायिका होती है । मदालसा से विवाह कर उसे लेकर ऋतध्वज अपने राज्य को लौट जाता है ।

द्वितीय दृश्य में मदालसा वनप्रदेश के नागराज अश्वतर के घर में दिखाई देती है जहाँ उस ने एक शिशु को जन्म दिया है और अब उसे लोरियों में ही ब्रह्मज्ञान पिला रही है । अर्धमूर्च्छित अवस्था में नदी में बहती हुई उस को नागराज ने निकाला था और पुत्री की तरह घर में रखा है । मदालसा ने भी उस वन प्रदेश की जनजातियों की सेवा में जीवन बिताने का निर्णय लिया है । नागराज अश्वतर के पूछने पर वह बताती है कि वह महाराज ऋतध्वज की पत्नी है । दानवों के नाश के लिए गये महाराज ने युद्धक्षेत्र में प्राण त्याग दिये हैं यह सूचना एक सैनिक ने मुझे देवालय में दी । मैं दासी को घर भेज कर उस सैनिक को विश्वसनीय समझ उस के साथ पति के अन्तिम दर्शन के लिए चल पड़ी क्योंकि उस ने महाराज का कण्ठहार भी मुझे दिया था । रास्ते में नदी किनारे उस की दुर्भावना को देख कर आत्महत्या के लिए नदी में कूद पड़ी थी ।

तृतीय दृश्य में मन्त्री सुमन्त्र महाराज ऋतध्वज को प्रेरित कर रहा है कि वह धैर्य धारण कर पुनः विवाह कर ले क्योंकि मदालसा ने कपट वेषधारी तालकेतु से बचने के लिए नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली है । ऋतध्वज इसे स्वीकार नहीं करता । उसे तो मदालसा के अभाव में अपने जीवित रहने पर भी क्षोभ है । पुष्पों, लताओं, पादपों में सर्वत्र उसे मदालसा का सौन्दर्य दिखाई देता है । मदालसा को पेड़ पौधों से बहुत प्यार था और वह कहा करती थी कि एक पेड़ लगा दिया जाये तो पुष्पों से देवों को और छाया और फलों से अतिथियों को सन्तुष्ट करता हुआ वह पुत्र के सभी काम कर देता है । ऋतध्वज जनकल्याण की भावना से वृक्षारोपण कार्यक्रम को सफल बनाना चाहता है । तीर्थयात्रा प्रसङ्ग में वह और सुमन्त्र बहुत दूर किसी वन प्रदेश में जा पहुँचे हैं । सुमन्त्र निकट किसी बस्ती का पता करने जाता है । इतने में एक पञ्चवर्षीय बालक हरिणशावकों के साथ खेलता हुआ आता है । ऋतध्वज उस से नाम पूछता है तो वह आत्मा को नामविहीन बताते हुए ब्रह्मज्ञान की चर्चा करने लगता है । आश्चर्यचकित होकर ऋतध्वज उस से माता पिता और

गुरु के विषय में पूछता है । इतने में सुमन्त्र लौट कर बताता है कि यह प्रदेश नागराज अश्वतर के संरक्षण में है । वह महाराज के स्वागत के लिए तैयार है । नागराज को परिचय देने पर भेद खुलता है कि मदालसा जीवित है और शिशु विक्रान्त मदालसा और ऋतध्वज का पुत्र है ।

चतुर्थ दृश्य में सुमन्त्र महाराज ऋतध्वज के समक्ष यह चिन्ता प्रकट करते हैं कि भविष्य में राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कोई राजकुमार तैयार नहीं किया गया । बच्चों की शिक्षा का पूर्ण दायित्व तो महारानी मदालसा को दिया गया है अत: वह मदालसा के कक्ष में जा कर उससे कहते हैं— हमारे विवाह के पच्चीस वर्ष पूरे हो जाने पर आज मैं तुम से कुछ मांगने आया हूँ । मदालसा के पूछने पर वह बताते हैं कि बड़ा बेटा विक्रान्त तो छोटी आयु में ही योगी बन गया । दूसरा बेटा सुबाहु आयुर्वेद के क्षेत्र में अनुसन्धान करने चला गया है । तीसरे पुत्र शत्रुमर्दन ने कामक्रोध आदि को जीतने का व्रत धारण कर सन्न्यास ले लिया है । अब चौथे पुत्र अलर्क के विषय में आशंका बनी रहती है कि न जाने कब घर छोड़ कर चला जाए । मैं राज्यरक्षा के लिए केवल एक पुत्र अलर्क की मांग करता हूँ ताकि उसे राजनीति का ज्ञान दिला कर युवराज बना सकूँ । मदालसा बताती है कि पति की इच्छा को वह पहले से ही जानती है । तभी अलर्क आता है और उससे बात कर महाराज जान लेते हैं कि वह राजनीति में निष्णात है । महाराज शीघ्र ही सभा बुला कर उसे युवराज पद देने की इच्छा प्रकट करते हैं ।

पुरन्ध्रीपञ्चके तृतीयं रूपकम्

मदालसा

प्रथमं दृश्यम्

ऋतध्वजः—अहो शोभनं गन्धर्वराजविश्वावसोः राजोद्यानम् । आम्रमञ्जरीणां परां शोभां दृष्ट्वा कोकिलानां च मधुरवचांसि श्रुत्वा कस्य यूनोः हृदयं सहसा उत्कण्ठितं न भविष्यति ?

वामपार्श्वे रमणीनामालाप इव श्रूयते । अत्रैव स्थित्वा श्रोष्यामि ।

कुण्डला—सखि मदालसे, त्वं तु केवलं विद्याध्ययने एव रता कियन्तं कालं यावत् ब्रह्मचर्यव्रतं धारयिष्यसि ?

मदालसा—ज्ञानोदधिस्तु अनन्तपारो गभीरश्च । मया सागरतटे स्थित्वा कतिपय-बिन्दव एव प्राप्ता अद्यावधि ।

कुण्डला—विनयशीले, **विद्या ददाति विनयम्** अत एव एवं भणसि । कुलगुरु-तुम्बरुमहाभागैस्तु गन्धर्वराजाय अन्यदेव सूचितम् ।

मदालसा— किं श्रुतं त्वया यद् गुरुवर्यैः माम् अधिकृत्य पित्रे कथितम् ?

कुण्डला— अथ किम् । राजकुमारी मदालसा सर्वविद्यानिष्णाता जाता परं तया स्वयं वरः न प्राप्तः अतः तस्यै योग्यवरस्य अन्वेषणं कार्यम् इत्यासीद् गुरु-पादानां मतम् ।

मदालसा—(हसित्वा) नहि जानन्ति ते यदहं तु विवाहबन्धनं स्वीकर्तुं न इच्छामि ।

कुण्डला—किं करिष्यसि तदा ।

मदालसा— ब्रह्मवादिनी भविष्यामि। आचार्यापदं प्राप्य शिष्येभ्यः जीवनकलां शिक्षिष्यामि।

कुण्डला—जाने तेऽभिरुचिम् अध्ययने अध्यापने च। परं यथा लतेयं सहकार-मवलम्बते तथैव नारी जीवनयात्रायां कमपि सहचरम् अपेक्षते यः तस्याः अवलम्बनं स्यात्।

मदालसा—नास्ति मत्कृते आवश्यकता अवलम्बनस्य। स्वयं सक्षमा जीवनपथे चलितुमहं न कस्यापि सङ्केतैः नर्तितुं पारयामि।

कुण्डला—नर्तिष्यसि तदा एकाकिनी एव।

मदालसा— (विहस्य) यदि त्वं शीघ्रमेव पतिगृहं गमिष्यसि तदा एकाकिनी भविष्यामि परं एकः उपायः अपि चिन्तितः मया।

कुण्डला—कः उपायः ?

मदालसा—सङ्गीतसाहित्यमाध्यमेन ब्रह्मविद्यां सरसां विधाय बहुभ्यः शिशुभ्यः शिक्षणं प्रदास्यामि।

कुण्डला—गृहस्थाश्रमं प्रविश्य स्वशिशूनां चरित्रनिर्माणं मातुरधीनम्। तत्र का विचारणा ?

मदालसा—यथाहं पश्यामि, पुरुषः भार्यायां स्वाधिपत्यं स्थापयति। द्रौपदीं स्वीयां सम्पत्तिं मन्यमानः युधिष्ठिरः तां द्यूते हारितवान् यथा सा निर्जीवं वस्तु आसीत्।

कुण्डला—निर्जीवं तु नासीत् परं युधिष्ठिरस्य एषा एव चिन्तनसरणिः आसीत् इति प्रतीयते।

मदालसा— हरिश्चन्द्रः स्वपत्नीं शैव्यां, पुत्रं रोहितं च जनसङ्कुले आपणे विक्रीत-वान्। नास्ति मे मनोरथः ईदृशं पत्नीपदमङ्गीकर्तुम्।

कुण्डला— कटुसत्यं खल्वेतत्। परं सखि अस्मिन् संसारे विभिन्नप्रकृतिकाः पुरुषा वसन्ति। स्वप्रकृत्यनुकूलः वरः अपि प्राप्यते। त्वं तु नवनवोन्मेषशालिन्या

प्रतिभया विहितैः नूतनैः प्रयोगैः अस्मान् सर्वान् विस्मापयसि । गृहस्थाश्रमोऽपि एका प्रयोगाशाला यस्यां त्वं स्वज्ञानविज्ञानयोः प्रयोगं कर्तुं शक्ष्यसि ।

मदालसा— कुण्डले ! दुर्लभो जनः ईदृशः यः गृहस्थप्रयोगशालायां स्वपत्न्यै स्वतन्त्रतां दद्यात् ।

ऋतध्वजः—(स्वगतम्) अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम् । (प्रकट्य) उपस्थितोऽहं शत्रुजितः पुत्रः ऋतध्वजः आज्ञा चेत् अहमपि अस्यां परिचर्चायां सम्मिलितो भवेयम् ।

कुण्डला—स्वागतम् अतिथये । अपि श्रुताः भवद्भिः मम सखीविचाराः ?

ऋतध्वजः—आम् । अत एव प्रष्टुमुत्सहे किं **गन्धर्वराजविश्वावसुमहाभागाः अपि स्वपत्नीं युधिष्ठिर इव हारितवन्तः हरिश्चन्द्र इव विक्रीतवन्तः ?**

कुण्डला— मदालसे तूष्णीं किमर्थं तिष्ठसि ? देहि प्रत्युत्तरम् ।

ऋतध्वजः—एकस्य अपराधेन सर्वा जातिः दण्ड्या इति विचित्रो न्यायः तव सख्याः ।

मदालसा—अत्रभवन्तः नारीस्वाधीनतामधिकृत्य किं कथयन्ति ?

ऋतध्वजः—माता एव प्रथमा आचार्या इत्यस्ति मे अवधारणा । नारी एव समस्तसृष्टेः निर्मात्री । परं कथनेन किम् ? परीक्ष्य एव ज्ञास्यति अत्रभवती । परीक्षार्थमुद्यतोऽस्मि गृहस्थाश्रमप्रयोगशालायाम् ।

मदालसा—स्वीकृतः प्रस्तावः ।

कुण्डला—दिष्ट्या वर्धेथां युवाम् । मित्रवर, गन्धर्वकन्या मदालसा गान्धर्वविवाहविधिना वृणोति अत्रभवन्तम् । आकारये अहं कुलगुरुं तुम्बुरुम् । असौ अग्निं साक्षीकृत्य आशीर्वचांसि वक्ष्यति ।

ऋतध्वजः—प्रथमं तु सखीवचनं श्रोष्यावः । तदनु स्वयमेव कुलगुरुं पितरौ च सभाजयितुं गमिष्यावः ।

कुण्डला—परस्परप्रीतिमतोः भवतोः उपदेशस्य नास्ति कोऽपि अवकाशः तदपि सखीस्नेहः मां भाषयति—भर्त्रा सदैव भार्या भर्तव्या रक्षितव्या च। यतो हि धर्मार्थकामसंसिद्धये यथा भार्या भर्तुः सहायिनी भवति तथा न कोऽपि अन्यः। परस्परमनुव्रतौ पतिपत्न्यौ त्रिवर्गं साधयतः। पतिः यदि प्रभूतं धनम् अर्जयित्वा गृहमानयति तत् खलु पत्न्यभावे कुपात्रेषु दीयमानं क्षयमेति।

ऋतध्वजः—लक्ष्म्याः रक्षार्थं पत्न्याः सहयोगः अनिवार्यः।

मदालसा—कुण्डले, लक्ष्मीपूजायां न मे प्रवृत्तिः। यदि लक्ष्मीः पूज्या प्रिया च अतिथिवर्यस्य,तदा इदानीमेव मे नमस्कारः।

ऋतध्वजः—स्वाभिमानिनि प्रिये ! समक्षं ते कथं कापि सपत्नी स्थातुं शक्नोति ? लक्ष्मीस्तु तव दासी भविष्यति नैव सपत्नी। मद्गार्हस्थ्यं तु त्वदधीनं भविष्यति। आत्मानं भाविसन्ततिं च ज्ञानविज्ञानानुसन्धात्र्या हस्ते समर्पयितुमीहे। आगम्यताम्, गुरुभ्यः पितृभ्यां च समाचारं श्रावयावः।

(सङ्गीतम्)

द्वितीयं दृश्यम्

(वनमध्ये नागराजस्य निवासस्थानम्)

नागराजः—पुत्रि ह्यः सायंकाले या औषधिः मया त्वत्कृते प्रेषिता तस्याः कीदृशः प्रभावः ?

मदालसा— तात ! आश्चर्यकरः प्रभावः आसीत् तस्या औषध्याः। अहं पूर्णरूपेण रोगरहिता जाता। नागमाता एतेषु दिवसेषु मम शुश्रूषायामेव संलग्ना भवति। तस्याः मातृसदृशस्नेहेन आश्वासनवचनैश्च रोगशोकौ मे दूरीकृतौ।

नागराजः— तव शुश्रूषायां सा महान्तम् आत्मसन्तोषं लभते। यदा अर्धमूर्च्छितायाम् अवस्थायां नदीप्रवाहे प्रवहन्ती त्वं मया स्वनिवासम्

आनीता तदैव मत्पत्नी दुहितेयं मया प्राप्ता चिरकालात् इति उक्त्वा स्वहर्षं प्रकटितवती ।

मदालसा—भवतोः द्वयोः स्नेहेन परमनुगृहीतास्मि । मम कुलं जातिं स्थानं च अविज्ञाय एव भवन्तौ मम प्राणान् मम शिशुं च रक्षितवन्तौ । कथमनृणा भविष्यामि ?

नागराजः— यदस्माभिः कृतं तत् तु प्राणिमात्रस्य कर्तव्यमस्ति । नश्वरोऽयं देहो यदि कस्यापि दुःखार्तस्य दुःखहरणे संनद्धो न भवति तदा तु निष्फलमेव देहधारणम् ।

मदालसा—भवादृशा महात्मान एव एवं चिन्तयन्ति ।

नागराजः—अलम् अनया वार्तया । परम् अन्यत् किञ्चित् प्रष्टुमिच्छामि ।

मदालसा—यथेच्छं पृच्छतु भवान् ।

नागराजः—गतमासे यदा त्वम् अत्र आनीता तदा तु तव शरीरावस्था चिन्तनीया आसीत् । कतिपयदिवसानन्तरं त्वं पुत्रं प्रसूतवती । अद्य शिशुस्ते एकविंशतिदिवसीयः जातः त्वं च स्वस्था दृश्यसे अत एव पृच्छामि कस्मात् प्रदेशात् त्वम् आगता ? कीदृशी विपत्तिः आसीत् यया त्वं नदीप्रवाहे निपातिता ? कुत्र अस्ति शिशोस्ते पिता ?

मदालसा—तात, गन्धर्वराजपुत्री मदालसाहं मानवानां महाराजस्य ऋतध्वजस्य पत्नी अस्मि । दानवानां नाशाय गतो महाराजः युद्धक्षेत्रे प्राणान् त्यक्तवान् इति दुःखदां सूचनां कोऽपि सैनिकः मह्यं दत्तवान् । महाराजस्य कण्ठहारोऽपि तेन मह्यं समर्पितः । महाराजेन मृत्युकाले कण्ठहारोऽयं अत्र भवत्यै दातुं मह्यं प्रदत्तः इति कथयित्वा सः दीर्घं निश्वसितवान् ।

नागराजः—अहो अतिदारुणा कथेयम् । ततः किम् अभवत् ?

मदालसा—देवालयं प्रति प्रस्थितया मया सह एका एव दासी आसीत् । तां सूचनार्थं राजप्रासादं विसृज्य स्वयमेकाकिनी एव अस्मत्सैनिकोऽयं विश्वसनीय इति मत्वा तेन सह पत्युः बलिदानस्थलीं प्रति प्रस्थिता ।

नागराज—ततः किम् ?

मदालसा—मार्गे तस्य दुश्चरित्रस्य व्यवहारमवलोक्य चरित्ररक्षणार्थम् आत्मानं नदीप्रवाहे प्राक्षिपम् । तत्पश्चात् नदीप्रवाहे कदा मूर्च्छिता जाता कथं च उद्धारिता इति न जाने ।

नागराजः—धैर्यं धारय पुत्रि ! पितृगृहे इव अस्मिन् गृहे निवस कतिपयदिनानि । तदनन्तरं त्वां पतिगृहं प्रेषयिष्यामि ।

मदालसा—पतिविरहितं कीदृशं पतिगृहम् ? नास्ति मे अभिलाषा राज्यवैभवेषु । अत्र एव वनेषु स्थित्वा तपश्चरन्ती नागकन्याभ्यः सङ्गीतशिक्षां प्रदास्यामि । ब्रह्मवादिनी इव स्वाध्यायरता **ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि** ।

नागराज—शिशुस्ते राजपुत्रः अतः वने वसितुं नार्हति ।

मदालसा—तात शिशुः मे अत्र वनभूमौ जातः । वनभूमिः एव तस्य मातृभूमिः । आवां मातापुत्रो वनवासिनां सेवायामेव जीवनं यापयिष्यावः ।

(शिशोः क्रन्दनध्वनिः)

नागमाता— वत्से, भृशं रुदन् अयं बहुप्रयत्नैरपि तूष्णीं न भवति गृहाण मातुर्वत्सलम् ।

मदालसा—कदाचित् बुभुक्षितः स्यात् ?

नागराजः—त्वम् अत्र एव तिष्ठ पुत्रि, यावद् आवां बहिर्गत्वा शिशोः नामकरण-संस्कारार्थं मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः ।

मदालसा—यद् भवद्भ्यां रोचते ।

(नागराजः नागपत्नी च बहिर्गच्छतः)

मदालसा—किमर्थं रोदिषि वत्स ? कस्य हेतोः रोदिषि ?

शुद्धोऽसि वत्स, बुद्धोऽसि वत्स।

निरञ्जनोऽसि पञ्चात्मकं शरीरम् नास्ति ते नाम।

नैवास्य देहस्य त्वं च कस्य हेतोः रोदिषि ?

वृद्धिस्ते नास्ति हानिस्ते नास्ति।

माता ते नास्ति तातस्ते नास्ति।

अजरोऽसि अमरोऽसि कस्य हेतोः रोदिषि ?

शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतत्।

अनश्वरेण प्राप्तं हि नश्वरम्।

नश्यासि नैव त्वं कस्य हेतोः रोदिषि ?

तातः कथयति अद्य तव नामकरणं भविष्यति। आत्मा तु नामरहितः लिङ्गरहितश्च। लोकव्यवहाराय कल्पनया एव नाम क्रियते। नास्ति तस्य आत्मना सह कोऽपि सम्बन्धः।

(नागपत्नी आगच्छति)

नागपत्नी—मदालसे पुत्रि, सर्वं सज्जीकृतं पूजाद्रव्यम्। सवत्सा एहि, सर्वा नागकन्याः शिशोः नामकरणोत्सवार्थं मङ्गलगीतानि गायन्त्यः पूजागृहे त्वां प्रतीक्षन्ते।

मदालसा—इयम् आगच्छामि मातः !

तृतीयं दृश्यम्

सुमन्त्रः—महाराज, कियन्तं कालं भवान् एकाकी जीवनयापनं करिष्यति ? छलेन अस्माकं महाराज्ञीं यः यमसदनं प्रेषितवान् स पापः तालकेतुः भवता दण्डितः प्राणदण्डेन।

ऋतध्वजः—आम् मित्र, दानवं तालकेतुं हत्वा मनसः शूलं दूरीकृतं चिरकालात्।

सुमन्त्रः—स्वामिन् अधुना धैर्यं धारयित्वा तीर्थयात्रायाः प्रतिनिवृत्य अत्रभवता कस्याश्चिद् सुकुमार्याः पाणिः गृहीतव्यः ।

ऋतध्वजः—सुमन्त्र, मत्कारणात् एव साध्वी प्रिया मे सङ्कटग्रस्ता नदीप्रवाहे आत्मानं समर्पितवती । धिङ् मां निष्ठुरमानसं यः तां मृगलोचनां विना जीवति ।

सुमन्त्रः—महाराज **गतस्य शोकः न कर्तव्य** इति शास्त्रवचनम् ।

ऋतध्वजः—गता सा संसारात् परं न तु मम हृदयात् । शृणु

यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद् भार्या मदालसा।
अस्मिन् जन्मनि नान्या मे भवित्री सहचारिणी॥

सुमन्त्रः—जाने महाराज्ञ्यां भवतः अनन्यां प्रीतिम् ।

ऋतध्वजः—मित्र, अस्यां यात्रायां वनस्थलीषु पदे पदे सखीं ते अवलोकयामि । लतासु तस्याः सुकोमले भुजे पश्यामि, कुसुमेषु तस्याः सौरभं जिघ्रामि, मृगाङ्गनानेत्रेषु तस्याः दृष्टिमवलोकयामि भ्रमरेषु च तस्याः मधुरध्वनिं शृणोमि ।

सुमन्त्रः— प्रगाढामनुरक्तिं प्रदर्शयति इयमनुभूतिः ! महाराज ! पितुःऋणात् मुक्तो भूत्वैव मोक्षं लभते नरः । अतः पुत्रप्राप्त्यै एव भवता विवाहप्रस्तावः स्वीकर्तव्यः ।

ऋतध्वजः— मित्र, अहमपि कदाचित् एवं चिन्तयामि परं **राज्ञः सन्ततिः तु प्रजाः ।** सम्यक् प्रजापालनेन राजा स्वर्गस्य मोक्षस्य वा अधिकारी भवति ।

सुमन्त्रः—महाराज, वनरात्रिषु भ्रमन्तौ आवां स्वराज्यस्य सीम्नः दूरमागतौ ।

ऋतध्वजः— ईदृश्यः वनराजयः अतिप्रिया आसन् मदालसायाः । प्रायः सा माम् अकथयत्---------------- ।

सुमन्त्रः—किमभिमतमासीत् महाराज्ञ्याः ?

ऋतध्वजः— **वृक्षारोपणं तत्पालनञ्च पुत्रपालनमिव भवति । पुत्रजन्मनोऽपि श्रेयस्करं वृक्षपालनम् ।** पुत्रस्तु पितरौ सेवेत न वा, परं वृक्षः छायया पुष्पैः

फलैश्च रोपयितारं तस्य जीवनकाले तु सेवते एव तस्य मृत्योः अनन्तरमपि सर्वेषां सेवया श्राद्धमपि कुरुते इत्यासीत् मदालसाया मतम् ।

सुमन्त्रः—प्रतीयते यत् महाराज्ञ्याः अभिलषितं सम्मानयता अत्रभवता स्वराज्ये सर्वत्र उद्यानवापीनिर्माणं वृक्षारोपणकार्यक्रमश्च प्रारब्धौ ।

ऋतध्वजः—अथ किम् । तथापि एते नैसर्गिकाः सघनाटवीप्रदेशाः अस्माकम् उद्यानानि अतिशेरते ।

सुमन्त्रः—महाराज, प्रकृतिदर्शनेन नेत्रे तृप्यतः । परम् उदरस्तु न पूर्यते । भोजनवेला उपस्थिता ।

ऋतध्वजः— अस्ति किञ्चित् भक्ष्यम् ?

सुमन्त्रः—अस्ति खाद्यं परं जलं नास्ति । नातिदूरे समक्षम् उपत्यकायां कतिपयानि कुटीराणि दृश्यन्ते तत्र गत्वा जलमानयामि । भवान् अत्रैव विश्राम्यतु कञ्चित् कालम् ।

ऋतध्वजः—तावत् मनोहरैः प्रकृतिदर्शनेन आत्मानं विनोदयामि । (सुमन्त्रः गच्छति) । (दूरतः बालस्य ध्वनिः)

विक्रान्तः— अयं मृगशावकः अतिशीघ्रं धावति । तिष्ठ रे तिष्ठ अहमपि त्वत्तो द्रुततरं धावामि । एषःगृहीतः एषः गृहीतः ।

ऋतध्वजः—बालस्येव ध्वनिरयम् । अहो मृगशावकमनुधावन् श्रान्तोऽयं सुकुमारः शिशुः । वत्स तिष्ठ तावत् । किं ते नाम ?

विक्रान्तः—प्रणमामि अतिथिमहाभागान् । कथयन्ति जनाः मां विक्रान्तं परं नाम तु कल्पनया कृतम् । आत्मा तु नामरहितः ।

ऋतध्वजः—बालोऽपि ज्ञानं भाषसे । वत्स कौ ते धन्यौ मातापितरौ ?

विक्रान्तः—मान्याः, आत्मस्वरूपस्य देहिनः न कापि माता न कोऽपि पिता, न कोऽपि भ्राता, न कोऽपि बान्धवः । सर्वे सम्बन्धाः नश्वरशरीराश्रिताः भवन्ति ।

ऋतध्वजः— तत्त्वज्ञाय बालयोगिने नमः । कुतः प्राप्तमिदं ज्ञानम् ? किं भवतः गुरोः नाम ज्ञातुं पारयामि ?

विक्रान्तः— परमः गुरुस्तु महेश्वर एव । परमत्रभौतिकशरीरधारिणी, पञ्चभौतिकशरीरस्यास्य निर्मात्री माता मम गुरुः ।

ऋतध्वजः—हे बालमुने, किं वयं तस्या विदुष्याः दर्शनं कर्तुं शक्ष्यामः ।

विक्रान्तः—अवश्यमेव । सा तु स्नेहमयी ज्ञानमयी सर्वेभ्यः स्नेहं ज्ञानं च वितरति । अहो मम सहचरः मृगशावकस्तु कुटीरं प्रति पलायितः । अतिथिमहाभाग ! आगम्यताम् । कुटीरं गमिष्यावः यत्र मे माता गुरुः नागकन्याः सङ्गीतं शिक्षयति ।

ऋतध्वजः—किं सा सङ्गीतमपि जानाति ?

विक्रान्तः—अथ किम् । यदा सा सामगानं गायति तदा सर्वे जनाः, पशवः, पक्षिणः अपि मुग्धाः सन्तः शृण्वन्ति । भवान् स्वयमेव तत्र गत्वा ज्ञास्यति तस्याः सङ्गीतनिपुणताम् । स्वरसाधना ब्रह्मसाधना एव इति स्पष्टीकृतं तया अनेकशः । इदानीं सङ्गीतकक्षा प्रचलति । आवां द्वारि स्थित्वा एव श्रोष्यावः ।

ऋतध्वजः—शोभनः कल्पः । भवतापि शिक्षितं सङ्गीतं किम् ?

विक्रान्तः—अथ किम् ।

ऋतध्वजः— गीयतां किञ्चित् ।

विक्रान्तः— उपनिषद्वाक्यं गायामि ।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

ऋतध्वजः—अहो मधुरा ब्रह्मज्ञानगीतिः ।

(सुमन्त्रः प्रविशति)

ऋतध्वजः—अहो सुमन्त्रमहाभागः प्रत्यागतः ।

मित्र पश्य इमं सङ्गीतज्ञं बालयोगिनम् । समीपमेव गृहम् अस्य ।

सुमन्त्रः—महाराज, नागराजाश्वतरस्य राज्यमिदम् । मया भवदागमनं सूचितं तस्मै । भवत्स्वागतार्थं समुत्सुकस्तिष्ठति सः ।

ऋतध्वजः—यस्य राज्ये ईदृशाः बालयोगिनः निवसन्ति तस्य दर्शनम् अवश्यमेव कर्तव्यम् । नागराजमपि द्रक्ष्यामः अस्य बालस्य आचार्यामपि । दर्शय मार्गम् ।

(मृदङ्गध्वनिः)

सुमन्त्रः—महाराज नागराजोऽश्वतरः सपत्नीकः अत्रभवन्तम् अभिनन्दयितुम् उपस्थितः ।

नागराजः— स्वागतं स्वागतम् अतिथिवर्याणाम् ।

ऋतध्वजः—शत्रुजितः पुत्रः ऋतध्वजः नागराजं प्रणमति ।

नागराजः—अहो भाग्यमस्माकम् । किं भवान् प्रथितयशसः शत्रुजितः पुत्रः मदालसायाः पतिः ऋतध्वजो नाम ।

ऋतध्वजः—मदालसाया नाम प्राक्तनक्षतं मे नवीकरोति ।

नागराजः—नावगतं मया ।

सुमन्त्रः—महाराज्ञी मदालसा तालकेतुना राक्षसेन धूर्ततया वनं नीता । सा च तस्य दुर्व्यवहारमाशङ्क्य नद्यां कूर्दित्वा प्राणान् त्यक्तवती इति श्रुतमस्माभिः । एकपत्नीव्रतेन महाराजेन अन्या नारी पत्नीरूपेण न स्वीकृता ।

(विक्रान्तस्य प्रवेशः)

विक्रान्तः— मया द्रुतं धावित्वा आचार्यायै निवेदितम् । प्रतीक्षते साऽत्रभवन्तम् ।

नागराजः—महाराज ऋतध्वज ! अभिनन्दस्व पुत्रं विक्रान्तम् । नदीप्रवाहात् समुद्धृता पुत्री मदालसा मद्गृहे तव पुत्रं प्रसूतवती । भवद्वियोगे तपश्चरन्ती सा स्वयमेव विक्रान्तस्य उपनयनसंस्कारं कृतवती ।

ऋतध्वजः—अहो मनोरथानामभूमिः हर्षावसरोऽयम् । अमृतमिव कर्णयोः निपतितम् । परं स्वनेत्रे स्वकर्णौ विश्वसितुं न पारयामि ।

नागराजः—महाराज ! पुत्रस्तु साक्षात् उपस्थितः कान्तां च शीघ्रमेव द्रक्ष्यसि ।

विक्रान्तः—अतिथिमहाभाग ! यदि आचार्यां द्रष्टुमिच्छति भवान् तदा आगम्यतां सङ्गीतकक्षम् ।

ऋतध्वजः—अवश्यमेव गच्छामः । वत्स ! दर्शय मार्गम् ।

विक्रान्तः—इतः इतः भवान् ।

(सङ्गीतध्वनिः)

ऋतध्वजः—विरहगीतिरियं हृदि निगूढं तापं प्रकटयति । पुत्र ! गच्छ अग्रतः पितुस्ते आगमनं सूचयितुम् ।

विक्रान्तः—आम् । गच्छामि तावत् ।

मदालसा—गीतं गायन्त्याः मे वामनयनं किमर्थं स्फुरति ? चिरवियोगिन्याः कृते कुतः अवसरः मङ्गलस्य ?

विक्रान्तः—मातः इति ! अतिथिमहाभागः समागतः । पुत्र ! पुत्र ! सम्बोध्य पितुस्ते आगमनं स्वमातरं कथय इति भणितं तेन महाभागेन ।

मदालसा—वत्स ! गभीरे सागरे मग्ना मम आशा उदेष्यति किम् ?

ऋतध्वजः—धन्योऽहम् । उदेति आशा मम भाग्यशालिनः देवि मदालसे !

मदालसा—किम् आर्यपुत्र ?

ऋतध्वजः—सौभाग्यशाली अहं माधुर्यमूर्तिं त्वां जीविताम् अवलोकयामि ।

मदालसा— आर्यपुत्र ! जीवितो भवान् दिष्ट्या । मन्दभागिन्यां मयि विधात्रा दयादृष्टिः निपातिता । दुष्टदूतेन भवत्कण्ठहारं दर्शयित्वा विप्रलब्धा अहं स्ववैधव्यं स्वीकृतवती आसम् । धिक् माम् अविचारितं कार्यं कुर्वाणाम् ।

ऋतध्वजः— प्रिये ! त्वया मत्कृते महत् कष्टं सोढम् । यद् वृत्तम् तद् वृत्तम् । अधुना सवत्सा मन्मनसि साम्राज्ये च राज्यं करिष्यसि सम्राज्ञि ! वत्स त्वमपि स्वराजधानीं गत्वा युवराजपदम् अलङ्करिष्यसि ।

विक्रान्तः—मातः किमिदं युवराजपदम् ? परमं पदं तु ब्रह्मज्ञानमिति श्रुतं मया अत्रभवत्या मुखात् । किमिदं युवराजपदं ब्रह्मज्ञानात् अधिकतरम् ?

मदालसा—नहि वत्स ! युवराजपदं सांसारिकवैभवस्य सरणिः । ब्रह्मज्ञानप्राप्तिस्तु सर्वविधवैभवमतिशेते ।

विक्रान्तः—तदा न मे लिप्सा युवराजपदे नश्वरेषु वैभवेषु च । रोचते मे ब्रह्मज्ञानम् अनश्वरम् ।

नागराजः—बालोऽपि ज्ञानवृद्धोऽयम् अस्मान् शिक्षयति ।

विक्रान्तः—अहं तु अत्रैव वनेषु स्थित्वा योगसाधनां करिष्यामि ।

मदालसा—आर्यपुत्र अमृततत्त्वं विज्ञाय संसाराद् विरक्तोऽयं शिशुः विश्वकल्याणाय जीवनं समर्पयिष्यति । अनुजानीहि इमम् अत्रैव स्थातुम् ।

ऋतध्वजः—प्रिये ! आत्मानमधिकृत्य किं कथयसि ?

मदालसा—यथा आज्ञापयतः मातृपितृतुल्यौ इमौ ।

नागराजः—वत्से ! कतिपयवर्षैरेव त्वया अस्माकं वनवासिनां मनांसि विजितानि । प्रतिष्ठस्व इदानीं स्वपतिगृहं सर्वसुखप्राप्त्यै ।

नागराज्ञी—वत्से गृहं मदीयं तवागमनेन सुरम्यं जातम् । त्वया विना शून्यमिव भविष्यति इदम् । त्वया शिक्षितानि गीतानि गायन्त्यः नागकन्याः सदैव त्वां स्मारयिष्यन्ति । त्वया प्ररोपितान् लतापादपान् अवलोकयन्ती कथं विस्मरिष्ये त्वाम् ? गच्छ, सौभाग्यमस्तु ते ।

मदालसा— मातः ! तात ! विक्रान्तो भवत्समीपे उषित्वा आत्मकल्याणे जनकल्याणे च संलग्नो भविष्यति इति मे सन्तोषावहम् ।

नागराजः—महाराज ऋतध्वज ! भवद् गृहे अस्मद् दुहितुः प्रतिष्ठा सदैव अक्षीणा भवतु इति अस्माकम् अभिलाषा ।

ऋतध्वजः—उपालम्भस्य अवसरो नैव प्रदीयते । अनुजानीहि गमनाय ।

चतुर्थं दृश्यम्

ऋतध्वजः—स्वागतं प्रधानामात्यस्य सुहृद्वरस्य सुमन्त्रस्य । प्रजानां वृत्तान्तं ज्ञातुं ये गुप्तचराः प्रेषिताः आसन् तैः किं सूचितम् ?

सुमन्त्रः—महाराज कुशलं प्रजानां सर्वत्र । परम्—

ऋतध्वजः—परं किं स्पष्टं ब्रूहि ।

सुमन्त्रः— भवन्तमधिकृत्य पौरजानपदाः किञ्चिद् यद्वदन्ति तत् न कीर्तिकरम् ।

ऋतध्वजः—सुमन्त्र ! शीघ्रं कथय । किं मया राजमर्यादा भिन्ना ? किं मया कोऽपि निर्दोषः दण्डितः ? किं मम राज्ये कस्यापि वित्तं चौरैः अपहृतम् ?

सुमन्त्रः—नहि, महाराज नास्ति ईदृशी कापि वार्ता ।

ऋतध्वजः—तदा किं मया नियुक्ता अधिकारिणः सम्यक् कार्यं न कुर्वन्ति ? किं धार्मिकाः सम्यक् प्रदानेन न पूज्यन्ते ? किं निर्बलाः सम्यक् न रक्ष्यन्ते ? किम् अनाथाः दीनाः सम्यक् न पाल्यन्ते ?

सुमन्त्रः—नहि महाराज ! एतत् सर्वं तु सम्यक् क्रियते एव । परमेका शङ्का पीडयति सर्वान् प्रजाजनान् ।

ऋतध्वजः— कीदृशी आशङ्का ?

सुमन्त्रः— महाराज ! अत्रभवता कोऽपि पुत्रः यौवराज्ये न अभिषिक्तः । सम्यक् परिपालिताः प्रजाः भवदनुपस्थितौ राष्ट्रस्य भविष्यमधिकृत्य चिन्तिताः सन्ति ।

ऋतध्वजः— मित्र, एषा चिन्ता मदीया अपि वर्तते । पुत्राः मे योगिनः दार्शनिकाः ब्रह्मविद्याज्ञातारः भविष्यन्ति परं राज्यं कः रक्षिष्यति इति न जाने ।

सुमन्त्रः— महाराज, त्रयः राजपुत्रास्तु राजधर्मम् उपेक्ष्य ज्ञानविज्ञानयोः अन्येषु क्षेत्रेषु निष्णाताः जाताः । अत्रभवतापि तेषां शिक्षामधिकृत्य समुचितप्रबन्धः न कृतः ।

ऋतध्वजः—मित्र त्वं तु सर्वं जानीषे । महाराज्ञी मदालसा एव अस्मिन् क्षेत्रे सर्वाधिकारसम्पन्ना । स्वप्रतिज्ञया बद्धोऽहं तां किञ्चिदपि कथयितुं नाशक्नवम् ।

सुमन्त्रः— महाराज ! राष्ट्रहिते कश्चिद् उपायः कर्तव्यः । महाराज्ञ्या मनसि न जाने किं वर्तते ? अस्य राष्ट्रस्य प्रयोजकः उत्तराधिकारी न वर्तते इति ज्ञात्वा कोऽपि शत्रुः अस्मद् राष्ट्रम् आक्रमितुं विचारयिष्यति ।

ऋतध्वजः— सुष्ठु वक्षि मित्र त्वम् । निश्चिन्तो गच्छ स्वकार्याय । अहम् अद्यैव कञ्चिद् उपायं विचारयामि । महाराज्ञीकक्षमेव गन्तुकामोऽस्मि ।

सुमन्त्रः— यथाज्ञा अत्रभवतः ।

पञ्चमं दृश्यम्

ऋतध्वजः— अहो स्वाध्यायरता मे प्रिया मदागमनमपि न जानाति । सैव कान्तिः, तदेव माधुर्यम् अस्याः मुखशोभां वर्धयतः । चतुर्विंशतिवर्षेषु अतीतेषु न स्मरामि कमपि क्षणं यदा अस्या मयि अनुरागः शिथिलीभूतः । राजमहिषि मदालसे ! द्वारि स्थितं प्रियं न अभिनन्दिष्यसि ?

मदालसा— अहो, स्वागतं महाराजस्य । दास्या भवदागमनं न सूचितम् ।

ऋतध्वजः— मया स्वयमेव सा प्रतिषिद्धा । किं तव स्वाध्यायसमये विघ्नरूपोऽहमागतः ?

मदालसा—नहि नहि नास्ति स्वाध्यायकालोऽयं मम । अलर्केण किञ्चित् पृष्टमासीत् तस्य समाधानार्थं शास्त्रावलोकनं कृतं मया । आगमिष्यति स किञ्चित् कालानन्तरम् ।

ऋतध्वजः—पञ्चविंशतितमे वर्षेऽस्मिन् आवयोः शुभविवाहस्य पतिस्ते याचते किञ्चित् त्वत्तः ।

मदालसा—आर्यपुत्र ! मदीयं सर्वं भवदीयमेव भवदीयं सर्वं च मदीयम् । कुतोऽवसरः याचनायाः परस्परम् ।

ऋतध्वजः—तथापि अद्य अहं विज्ञापयामि यत्...........

मदालसा—महाराज ! भवान् कथं विज्ञापयति ? अहम् अत्रभवतः न केवलं पत्नी । भवद् राज्ये सुखं वसन्ती अहं महाराजस्य प्रजा अपि अस्मि । महाराजेन तु आज्ञापयितव्यं न तु विज्ञापयितव्यम् ।

ऋतध्वजः—प्रिये ! गृहस्थाश्रमं स्वीकृत्य आवाभ्यां चत्वारः पुत्राः प्राप्ताः । विक्रान्तस्तु पञ्चवर्षीयः एव योगी सन् वने निवसितुं निश्चयमकरोत् ।

मदालसा—तस्य जन्मकाले मम वैराग्यवृत्तिः एव प्रबला आसीत् । जन्मतः एव तस्य वृत्तिमवलोक्य मया ब्रह्मज्ञानमेव तस्मै प्रदत्तम् ।

ऋतध्वजः— आयुर्वेदशास्त्रपारङ्गतः सुबाहुः त्रिवर्षपूर्वं वनौषधीनाम् अनुसन्धानार्थं वनं गतः ।

मदालसा— सुबाहोः अभिरुचिः रोगार्तानां क्लेशहरणे अस्ति । अत एव सः स्वजीवनं जनकल्याणार्थम् अनुसन्धानक्षेत्रे यापयितुमिच्छति । मया अपि सः तदर्थमेव प्रेरितः ।

ऋतध्वजः— अस्माकं तृतीयः पुत्रः शत्रुमर्दनः गतवर्षे कामक्रोधमदलोभादीन् शत्रून् जेष्यामि इति उक्त्वा प्रव्रजितः । अधुना प्रतिक्षणं शङ्के यत् कनिष्ठोऽलर्कोऽपि गृहत्यागं करिष्यति चेत् तदा तु कः मद्राज्यं

परिरक्षिष्यति ? प्रिये ! त्रयः पुत्रास्तु त्वया यथेष्टं शिक्षिताः प्रेषिताः च । चतुर्थं पुत्रम् अलर्कं राष्ट्ररक्षणार्थं याचेऽहम् ।

मदालसा—(सहासम्) अहो चतुर्थांशभाग् महाराजाधिराजः स्वाधिकृतभागं ग्रहीतुमागतः । महाराज, यद्यपि भवता अद्यैव मतमिदं प्रकटीकृतं परं मया भवदभिमतं पूर्वमेव ज्ञातमासीत् ।

ऋतध्वजः—शोभनं शोभनं त्वदनुमोदनम् । अन्यथा जरावस्थायामपि सिंहासने मम अवस्थानं हास्यास्पदम् अभविष्यत् ।

मदालसा— नातिदूरे वानप्रस्थाश्रमप्रवेशकालः इति सम्यक् स्मृतं मया । अलर्कस्तु राष्ट्ररक्षणाय समर्पितो भविष्यति परमत्रभवता यः वचनभङ्गः कृतः तस्य स्थाने अन्यद् वचनं मे दातव्यम् ।

ऋतध्वजः—किम् अभिलषति प्रिया मे मत्तः ?

मदालसा— मया सह एव वानप्रस्थाश्रमः स्वीकर्तव्यः ।

ऋतध्वजः— अवश्यमेव । पश्य अलर्कः इत एव आगच्छति । तस्याभिमतं ज्ञात्वा तं राजनीतेः ज्ञानं प्राप्तुं गुरोः समीपे प्रेषयितुमिच्छामि ।

अलर्कः— वन्दे मातरं वन्दे पितरम् ।

मदालसा— चिरं जीव वत्स ।

ऋतध्वजः— चक्रवर्तित्वं प्राप्य सुखी भव वत्स ।

अलर्कः—गृहीतमाशीर्वचनम् । परं तात ! राज्ञः राजपुत्रस्य च सुखं तु प्रजानां सुखे एव निहितम् ।

ऋतध्वजः—प्रजानां सुखं कथं स्यादिति विदितं किं त्वया वत्स ?

अलर्कः— तात !

यथार्थवचनं मातू राजा कालस्य कारणम् ।
योगक्षेमौ हि राष्ट्रस्य राजन्याये प्रतिष्ठितौ ॥

ऋतध्वजः— किं राज्ञः कर्तव्यमधिकृत्य ज्ञातं किञ्चित् ?

अलर्कः— तदेव ज्ञातं यद् भीष्मपितामहेन युधिष्ठिराय उपदिष्टम् ।

ऋतध्वजः— किमुपदिष्टं पितामहेन ?

अलर्कः— उक्तं तैः—

राज्ञा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते।
यद् यदाचरते राजा तत् प्रजाभ्यः प्ररोचते॥

पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुममिवाण्डजाः।
नरास्तमुपजीवन्ति नृपं सर्वार्थसाधकम्॥

नहि कामात्मना राज्ञा सततं कामबुद्धिना।
नृशंसेनातिलुब्धेन शक्याः पालयितुं प्रजाः॥

ऋतध्वजः—सम्यक् ज्ञातं त्वया वत्स ! परं दण्डस्य प्रयोगस्तु राज्ञा कर्तव्यः । किं दण्डे प्रयुक्ते सति प्रजा दुःखिता भवन्ति ? किं कथयसि अत्र ।

अलर्कः—तात ! कुप्रयुक्तेन दण्डेन एव प्रजाः दुःखिता भवन्ति । परं पक्षपातं विहाय सुप्रणीतेन दण्डेन तु प्रजाः रक्ष्यन्ते त्रिवर्गश्च प्रवर्त्यते ।

ऋतध्वजः— शोभनं शोभनम् ।

मदालसा—वत्स पिता ते त्वां शत्रुहन्तारं द्रष्टुमिच्छति ।

अलर्कः—भवत्यैव उपदिष्टम्—

कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मानस्तथैव च।
हर्षश्च शत्रवो ह्येते नाशाय कुमहीभृताम्।

मदालसा—इतिहासपुराणाभ्यां ज्ञायते एवमेव । महाराजः पाण्डुः कामप्रसक्तः सन् अकालमृत्युं प्राप्तवान् ।

अलर्कः—ज्ञायते ।

मदालसा—अत एव प्रथमम् एतान् विजित्य पश्चात् विजययात्रायै गमिष्यासि ।

ऋतध्वजः—प्रथमः कल्पः ।

मदालसा—वत्स इदमपि स्मर्तव्यम् ।

प्रागात्ममन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता ।
जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः ॥

ऋतध्वजः—प्रिये त्वया शिक्षितस्य राजपुत्रस्य अन्यगुरोः समीपे प्रेषणमनावश्यकं पश्यामि । राजधर्मे निष्णातस्य अलर्कस्य हस्ते राष्ट्रस्य मे भविष्यत्कालः सुरक्षितः समुन्नतः भविष्यति इति मन्ये ।

मदालसा—कृतकृत्या अहं यदि भवान् एवं मन्यते ।

ऋतध्वजः—परश्वः एव राजसभामाहूय पौरजानपदानामनुमत्या अलर्कं यौवराज्ये स्थापयिष्यामि । वर्षान्ते च राज्यभारम् अस्मै दत्त्वैव वानप्रस्थाश्रमप्रवेशः समीचीनः ।

मदालसा—मह्यं प्रदत्तं वचनं न विस्मर्तव्यम् । अहमपि भवता सह वनं गमिष्यामि ।

अलर्कः—अल्पज्ञेन मया तातात् मातुश्च बहु शिक्षितव्यम् ।

मदालसा—अलं चिन्तया वत्स । सप्ताङ्गस्य राज्यस्य योगक्षेमौ सुविदितौ त्वया ।

॥ समाप्तमिदं मदालसारूपकम् ॥

सुगन्धा

कथासार

कल्हणकृत राजतरंगिणी एवं जयन्तकृत आगमडम्बर से सामग्री लेकर लिखा गया यह रूपक कश्मीर के महाराजा शंकरवर्मा की पत्नी सुगन्धा के जीवनवृत्त पर आधारित है । पति के जीवनकाल में सुगन्धा ने धार्मिक क्षेत्र में विशेष रुचि ले कर विभिन्न मतमतान्तरों के विवाद को शान्त करवाया था । पति की मृत्यु के बाद उसने अपने पुत्र गोपालवर्मा की संरक्षिका और पुत्रों की मृत्यु के बाद स्वतन्त्र शासिका के रूप में कश्मीर पर राज्य किया । सर्वधर्मसमभाव, लोकतान्त्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा और प्रजा का हितचिन्तन उसके प्रमुख लक्ष्य थे जिन का अंकन इस रूपक में हुआ है ।

प्रथम दृश्य का आरम्भ नीलाम्बर, नीला और उनके साथियों के समूह गान से होता है । वे सुरापान गोष्ठियों और नाचरंग में ही जीवन की सार्थकता मानते हैं । दूसरी ओर से संकर्षण और बटु आते हैं । धर्माध्यक्ष संकर्षण चिन्तित हैं कि समाज के नैतिक पतन से गृहस्थियां उजड़ जायेंगी । बटु मज़ाक करता है कि जब हम दोनों ने विवाह ही नहीं किया तो नाहक चिन्ता क्यों करें । वे दोनों इस समस्या को भी शैवाश्रम में होने वाली संगोष्ठी में रखने के लिए चले जाते हैं । दूसरी ओर से नीलाम्बर और नीला गाते आते हैं । नीलाम्बर को शिकायत है कि राजा का धन ब्रह्मचारियों तथा साधुओं में लुट रहा है । वह भी मतमतान्तरों की संगोष्ठी में जाकर ईश्वर को असिद्ध कर राजा को अपने मत में शामिल करना चाहता है पर उसे सफलता नहीं मिलती । वे दोनों पुन: उसी नाचरंग के लिए लौट जाते हैं । कई दिनों से चल रहे शास्त्रार्थ में निर्णायक धैर्यराशि अपना फैसला देते हैं कि जैसे किसी

बड़े घर में लोग कई दरवाजों से दाखिल हो सकते हैं उसी तरह अलग अलग धर्म कई रास्तों से एक ही लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचाते हैं। सभी धर्म दया, अहिंसा, सच्चाई को मानते हैं फिर झगड़ा कैसा। हां जो लोग सिर्फ भोगविलास का प्रचार कर रहे हैं उन्हें देश से निकाल देना चाहिए।

द्वितीय दृश्य में राजाज्ञा से ऐसी घोषणा होती है जिसे सुन कर नीलाम्बर और नीला घबरा जाते हैं। उन्हें इस बात पर क्रोध है कि सत्ताधारियों के पाप कोई नहीं देखता। मन्त्री का पुत्र शराब पी रहा हो तो लोग कहते हैं दवाई ले रहा है। अन्त में दोनों कश्मीरभूमि से भाग निकलने की ठान लेते हैं।

तृतीय दृश्य में धर्माध्यक्ष संकर्षण और महारानी सुगन्धा की बातचीत चल रही है। सुगन्धा यह सूचना पा कर खुश है कि धार्मिक विवाद के सुलझने पर सभी लोग आपस में प्रेम से रह रहे हैं। वह धर्माध्यक्ष से पूछती है कि कितने विद्यार्थियों को वजीफे दिये गये हैं, कितने विद्वानों को सम्मानित किया गया है? उसे बौद्ध विहार की मरम्मत और शैव मठ में पूजागृह बनवाने की सूचना भी मिलती है। संकर्षण यह संकेत देता है कि कुछ स्वार्थी उच्च अधिकारी प्रजा को तंग कर घूस लेते हैं जिस से प्रजा में रोष फैल रहा है। तभी सुगन्धा की पुरानी सखी आश्रम की आचार्या योगेश्वरी आती है। महारानी संकर्षण को भेज कर योगेश्वरी के साथ राज्य में फैले भ्रष्टाचार के कारणों पर विचार करती है। महाराजा शंकरवर्मा की नित नयी युद्धयात्राओं पर होने वाले खर्च की पूर्ति प्रजा से कर लेकर और मन्त्रियों से धन लेकर की जा रही है। इसी कारण वे मन्त्री निडर होकर प्रजा से घूस ले रहे हैं। अभी हाल में राजसंवाह अर्थात् राज चलाने का खर्च पूरा करने को नया कर लगाया गया। राजकुमार गोपाल पिता से मिलकर माँ को बतलाता है कि पिताजी ने नये कर को हटाना स्वीकार नहीं किया अपितु मुझे ही शर्मिन्दा किया है। वे कल भी एक नयी युद्धयात्रा पर उद्भाण्ड जा रहे हैं। योगेश्वरी की सलाह से सुगन्धा युद्धयात्रा पर राजा के साथ जाने का निर्णय लेती है ताकि रास्ते में उन्हें समझा कर भविष्य में निरर्थक हिंसात्मक युद्धों से रोक सके।

चतुर्थ दृश्य में विजय प्राप्त कर के लौटता हुआ राजा शङ्करवर्मा विषबाण से ज़ख्मी हो जाता है । पहाड़ी रास्ते पर लगाये गये शिविर में मृत्युशय्या पर पड़ा है । सुगन्धा पास बैठी उसे धीरज बंधा रही है । राजा को पश्चात्ताप है कि उस के हिंसक युद्धों में हजारों सैनिक ज़िन्दगी भर के लिए विकलाङ्ग हो गये हैं । उसे उन सैंकड़ों विलाप करती हुई नारियों का ध्यान आता है जिन के सुहाग युद्धों की भयंकर आग में भस्म हो गये हैं । वह दु:खी है कि वह अब जीते जी कश्मीर की भूमि तक नहीं पहुँच सकेगा और इच्छा प्रकट करता है कि उस का दाहसंस्कार कश्मीर की धरती पर किया जाये । वह सुगन्धा को प्रेरित करता है कि सती होने की बजाय वह जिन्दा रह कर मन्त्री प्रभाकर देव की सहायता से गोपालवर्मा की संरक्षिका बन कर राजशासन को चलाये । शंकरवर्मा की मृत्यु होने पर महारानी चीख पड़ती है परन्तु परिस्थिति को समझ कर अपने को संभाल लेती है । राजा की मृत्यु की सूचना से सेनाओं में विप्लव की आशंका है अत: वह इसे गुप्त रख कर छ: दिन की यात्रा कर के बारामूला पहुँचने पर राजा के शरीर का दाह संस्कार कराती है ।

पंचम दृश्य में राजकुमार गोपाल वर्मा की संरक्षिका के रूप में सुगन्धा ने राज्य कार्य संभाल लिया है । कुछ मन्त्री और अधिकारी जिन की रिश्वतें बन्द हो गई हैं, सुगन्धा को बदनाम करना चाहते हैं । दुर्घट और रिल्हण गोपालवर्मा को मरवाने का षड्यन्त्र रचते हैं ताकि प्रभाकर देव पर झूठा आरोप लगाया जा सके वह राज्य को हथियाना चाहता है और महारानी के साथ उस के अवैध सम्बन्ध हैं ।

षष्ठ दृश्य में महारानी सुगन्धा और आचार्या योगेश्वरी बात कर रही हैं । पुत्र की मृत्यु और जनापवाद जैसी मुसीबतों को सहते सहते वह अब मानसिक और शरीरिक रूप से टूट सी गई है । आचार्या योगश्वरी के बार बार समझाने पर भी उस का मन नहीं थकता । जनप्रतिनिधियों और मन्त्रियों की बैठक बुलवा कर वह राज्यभार किसी सुयोग्य व्यक्ति को सौंप कर स्वयं आश्रम में जाकर शेष जीवन ईश्वर भक्ति में बिताने का निश्चय करती है । योगेश्वरी उसे समझाती है कि धैर्य की परीक्षा तो आपत्ति में ही होती है ।

तभी धैर्यराशि आ कर दोनों को सूचना देते हैं कि छोटे छोटे तीन बच्चों के साथ एक विधवा युवती ने उन के आश्रम में शरण ली है। उस के पति रामदेव ने आत्महत्या कर ली है और मरने से पहले महारानी के नाम एक पत्र लिखकर छोड़ा है। पत्र के द्वारा सारा राजनैतिक षड्यन्त्र खुल जाता है कि कैसे दुर्घट और रिल्हण ने कूटनीति से रामदेव के माध्यम से राजकुमार को मरवा कर प्रभाकरदेव को बदनाम किया है। उदारहृदया महारानी सुगन्धा रामदेव की निर्दोष पत्नी और उस के बच्चों के रहने का प्रबन्ध आश्रम में करवा कर उनके पालन का व्यय राजकीय कोष से कराने का निर्णय लेती है। वह स्वयं भी राज्यत्याग कर आश्रम में जाना चाहती है पर योगेश्वरी की प्रेरणा से और मन्त्रिपरिषद् और जनता की प्रार्थना पर अपना निर्णय बदलती है। भावना से कर्तव्य पालन को ऊँचा मान कर वह प्रजापालन के लिए तैयार हो जाती है।

पुरन्ध्रीपञ्चके चतुर्थं रूपकम्

सुगन्धा

प्रथमं दृश्यम्

(नीलाम्बरमिथुनस्य प्रवेशः)

नीलाम्बरः नीला च—

लोको जातो येन सनाथः ।
जयति मुनिर्नीलाम्बरनाथः ।।

यस्य शासने नास्ति दोषः ।
भवे भुज्यते भोगानन्दः
परलोकेऽपि भवति पोषः ।
अन्य आगमाः सर्वे विफलाः
यत्र निरर्थं देहः शुष्यते ।।

भवति चन्मोक्षे सन्देहः ।
केनापि न तत्र तुष्यते ।।

(गायतः मिथुनस्य प्रस्थानम्), (अन्यपार्श्वतः बटोः संकर्षणस्य च प्रवेशः)

बटुः—अहो ! तरुणमनोऽनुरञ्जनम् इदं तपः ।

सङ्कर्षणः—वत्स ! नीलाम्बरैर्नूतना इयं प्रारब्धा पाषण्डलीला । वर्धते चेद् इयं भग्नम् इव धर्ममार्गं पश्यामि । युवानो धर्ममार्गाद् भ्रष्टा भविष्यन्ति । भार्याः भर्तृवेश्मसु चिरं न स्थास्यन्ति ।

बटुः—निर्मूला निरर्थका च इयम् अस्मदीया चिन्ता । आर्येण अद्य अपि दारसङ्ग्रहः न कृतः । अस्माकं पुनः दूरे पत्नी ग्रहणकथा । अह ह ह.........

सङ्कर्षणः—अलं परिहासेन । महान् एष विप्लवः उपस्थितः । समाधानम् अस्य चिन्तनीयम् ।

बटुः—न मे प्रतिभाति, भवान् एव जानाति । यथा अहं मन्ये प्रवर्धमाने अस्मिन् कलियुगे कृतयुगस्य द्वापरस्य त्रेतायुगस्य वा वार्ता कथं चलिष्यति ?

सङ्कर्षणः—अदूरदर्शी असि त्वम् !

बटुः—ततः किं करणीयम् ?

सङ्कर्षणः—अद्य शैवाश्रमे या विदुषां गोष्ठी आयोजिता तत्र एषा समस्या अपि विचारार्थं प्रस्तोतव्या ।

बटुः—अथ किम् । तत्रैव गमिष्यावः (द्वयोः प्रस्थानम्)

(अन्यपार्श्वतः नीलाम्बरमिथुनस्य प्रवेशः)

नीलाम्बरः—नीले ! कथं चिरं स्थास्यति शासनं राज्ञः शङ्करवर्मणः यस्य साम्राज्यलक्ष्मीः अग्निहोतृभिर्वनस्थैः यतिभिः ब्रह्मचारिभिः एभिश्च पाशुपतपाञ्चरात्रिकार्हतसांख्यसौगतप्रभृतिभिः अनर्गलं भुज्यते ?

नीला—अस्मान् प्रति तु तस्य कृपादृष्टिः न वर्तते । कश्चिद् उपायः चिन्त्यताम् ।

नीलाम्बरः—प्रिये चिन्तां मा कुरु । श्रुतं मया अद्य शैवाश्रमे बहूनां पण्डितमानिनां सङ्घट्टः सञ्जातः ।

नीला—ततः किम् ?

नीलाम्बरः—तत्र गमिष्यावः । तेषां समक्षम् ईश्वरं निराकृत्य स्वमतं प्रतिष्ठापयिष्यामि । शास्त्रार्थे विजेता भूत्वा राजानं स्वपक्षे करिष्यामि येन अयम् अर्थपरायणः भूत्वा चिरं राज्यसुखं भोक्ष्यते ।

नीला—तदा तु त्वं भविष्यति प्रधानामात्य: । वयं सर्वे राजप्रासादेषु वत्स्याम: । निर्विघ्नं चलिष्यति अस्माकं मनोरञ्जनम् ।

नीलाम्बर:—त्वरस्व त्वरस्व । अन्यथा हस्तगतं प्रधानमन्त्रिपदं हस्तात् पतिष्यति । (उभौ चलत:, पुनरागच्छत:)

नीला—मन्त्रध्वनिभि: प्रतीयते तपोवनभूमिरियम् ।

नीलाम्बर:—प्राप्ता वयं शैवाश्रमम् । तदेहि प्रविशाव: । अहो अयं स: शैवाचार्य: ।

नीला—एष: च महामीमांसक: सङ्कर्षण: । इमे च अन्ये नानाशास्त्रविद: ।

नीलाम्बर:—भवतु उपसर्पाव: । कुशली असि तपस्विन् !

शैवचार्य:—शम्भुकृपया सर्वं कुशलम् । आस्यताम् ।

नीलाम्बर:—अहं तु प्रष्टुम् इच्छामि किमर्थम् आत्मा क्लिश्यते भवद्भि: इति ?

शैवाचार्य:—कीदृश: क्लेश: ?

नीलाम्बर:—तपांसि यातना:, संयम: भोगवञ्चनम्, अग्निहोत्रादिकर्म सर्वं क्लेशकरम् ।

शैवाचार्य:—न क्लेशकरम् अस्मत् कृते ! ईदृशे कर्मणि भगवता ईश्वरेण प्रेरिता: स्म: ।

नीलाम्बर:—क: पुन: भगवान् ईश्वर: ? अस्माभि: तु कदापि स: न दृष्ट: ।

शैवाचार्य:—किं भवान् प्रत्यक्षप्रमाणम् एव स्वीकरोति ?

नीलाम्बर:—अथ किम् ?

शैवाचार्य:—बुभुक्षित: भवान् ओदने प्रवर्तते न सिकतायाम् ।

नीलाम्बर—यदि एवं तत: किम् ?

शैवाचार्य:—स्पष्टम् इदं यत् प्रमाणं नाम न खलु इन्द्रियगोचरम् ।

नीलाम्बर:—तत: किम् ?

शैवाचार्यः—कार्येण कर्तुः अनुमानं सिध्यति। क्षित्यादिकार्येण कर्ता ईश्वरः सिध्यति।

नीलाम्बरः—ननु विलक्षणमेव इदं क्षित्यादिकार्यम्।

शैवाचार्यः—ननु विलक्षणमेव कर्तारं कल्पयन्तु भवन्तः।

नीलाम्बरः—न कल्पयितुमप्रसिद्धं शक्नुमः।

शैवाचार्यः—वयमपि न कार्यमकर्तृकं त्यक्तुं शक्नुमः।

नीला—प्रिय नीलाम्बर नृत्यसङ्गीतादिमनोरञ्जनकार्येषु नेयः कालोऽयम्। किमर्थं वृथा विवादेषु बहुमूल्यां घटिं यापयसि त्वम्।

नीलाम्बरः—सम्यग् भणसि प्रिये। एतेषां बुद्धिः न ग्रहीष्यति किञ्चित्। तद् गच्छावः।

(शङ्खस्य मङ्गलध्वनिः)

बटुः—आर्य! निर्णायकमहाभागाः समागताः।

शैवाचार्यः—सादरं प्रवेश्यताम्।

शैवाचार्यः—नमो नमः। नमो नमो धैर्यराशिमहाभागाय।

धैर्यराशिः—नमः शिवाय, नमः शिवाय। महती विद्वत्सभा वर्ततेऽत्र।

सङ्कर्षणः—भगवन् महान् विवादो वर्तते त्रयीविदां तीर्थान्तराणां च।

धैर्यराशिः—जानेऽहम्। राज्ञ्या सुगन्धादेव्या, अत्र विवादे स्थेयतया नियुक्तोऽहं गतदिवसेषु विभिन्नवादिनां वचनप्रतिवचनानां श्रवणे व्यापृतः आसम्।

सङ्कर्षणः— भो नैयायिकतिलकाः, उपस्थिताः सर्वे वादिनः। पञ्चरात्राद्यागमाः प्रमाणमप्रमाणं वेति वादिनाम् इह विप्रतिपत्तिः।

धैर्यराशिः—पक्षद्वयेऽपि युक्तयो मया श्रुता गृहीताश्च। तदिदानीमवहितैः इमाः श्रूयन्ताम्।

सर्वे—अवहिता: स्म: ।

धैर्यराशि:—परमं पुरुषार्थं प्रति आगमानां काचित् विरोधिता नास्ति । अस्ति किम् ?

बटु:—भगवन् नास्ति काचिद् विरोधिता ।

धैर्यराशि:—लक्ष्यं तु सर्वेषां मोक्षप्राप्तिरेव ।

शैवाचार्य:—अथ किम् ।

धैर्यराशि:—यथा बहव: जना: महागृहं प्रवेष्टुकामा: विभिन्नद्वारै: प्रविशन्ति तथैव मुमुक्षवोऽपि मोक्षप्राप्त्यै विभिन्नमार्गान् स्वीकुर्वन्ति ।

सङ्कर्षण:—समुचितमुक्तं भवद्भि: ।

धैर्यराशि:—ईश्वरबहुत्वेऽपि काचन युक्तिर्न विद्यते । जगत्प्रसूतिहेतोरनादि-पुरुषस्य सर्गस्थितिप्रलयकार्यविभागयोगाद् ब्रह्मेति विष्णुरिति रुद्र इति नामभि: प्रसिद्धि: ।

सङ्कर्षण:—युक्तं भणति भवान् ।

धैर्यराशि:— सर्वे आगमा अहिंसासत्यसन्तोषशौचदमदानदयादिरूपं धर्मं वर्णयन्ति । येषु कुत्सितेषु आगमेषु अगम्यगमनम् अशुचिभक्षणादि आदिश्यते तथाविधानां प्रामाण्यं तु न कोऽपि वादी अत्र स्वीकरोति । यथामति कथितमेतन्मया । अत्रभवन्त: किं कथयन्ति ?

सर्वे—स्वीकृतो निर्णय: । स्वीकृतो निर्णय: ।

सङ्कर्षण:—भवत्प्रभवया सरस्वत्या तावद् उच्छ्वसिता इव पवित्रीकृता इव वयं सर्वे । देव्या: सुगन्धाया: प्रतापेन सर्वे विवादा: परिसमाप्ता: ।

धैर्यराशि:—महाविद्वांस: ! एकस्मिन् कार्ये सततमवहितै: भवितव्यम् आर्यै: ।

शैवाचार्य:—कस्मिन् कार्ये ?

धैर्यराशि:—भवदीयं नाम मुखे दत्वा दुराचारतया ये विप्लावयन्ति शास्त्रं च धर्मं च तेषां स्वाश्रमेषु स्थानं न देयम् ।

शैवाचार्यः—एतदपि सत्यमनुष्ठीयते। किन्त्वयमर्थो नास्मदधीनः। राजनियुक्तैः सहायता देया।

सङ्कर्षणः—एवमेतत्। राजाज्ञापि घोषयिष्यते। इदानीं सर्वैः स्वेषु स्वेषु आश्रमेषु यथाव्यवस्थितम् आस्यताम्। आर्य धैर्यराशे! वयमपि इदानीं यथावृत्तं स्वामिन्यै निवेदयामः। आगम्यताम्।

शैवाचार्यः—गच्छन्तु अत्रभवन्तः पुनर्दर्शनाय।

द्वितीयं दृश्यम्

जयति मुनिर्नीलाम्बरनाथः।
जयति मुनिर्नीलाम्बरनाथः॥

(घोषणा)

भोः भोः पौरजानपदा एष खलु महाराजशङ्करवर्मदेवराजाज्ञया भट्टश्रीसङ्कर्षणः सर्वानिव युष्मान् बोधयति—

ये ये प्रस्तुतधर्मविप्लवकृतः पापास्तपोऽपायिनः।
ते चेदाशु न यान्ति घातयति तान् दस्यूनिव क्ष्मापतिः॥

नीला—अहो! नीलाम्बर! यमराजस्य आदेश इव घोषणा इयं प्रतिभाति।

नीलाम्बरः—प्रिये नीले भग्ना अस्माकं मनोरथाः। दारुणः खलु राजा शंकरवर्मा येन वयं नीलाम्बरा राष्ट्रात् निर्वासिताः।

नीला—दारुणा देवी सुगन्धा, यया महाराजनामतः सर्वम् इदं कारितम्।

नीलाम्बरः—प्रिये! राजा तु पञ्चनारीभिः सह विवाहं कृत्वा अपि दुराचारी न कथ्यते। स्वच्छन्दप्रणयिनाम् अस्माकं प्रेमक्रीडा पण्डितम्मन्यानां हृदयेषु किं शूलं करोति?

नीला—प्रिय! **समर्थस्य को दोषः? निर्बला एव दोषभाजनानि दण्डपात्राणि च भवन्ति**। अमात्यस्य पुत्रं सुरां पिबन्तम् अपि दृष्ट्वा जनाः कथयन्ति, यत्

स तु औषधिसेवनं करोति इति ।

नीलाम्बरः—सत्यं भणसि ।

नीला—प्रकृतिसुभगं रमणीयोद्यानं स्वर्गोपमम् इदं नगरं विहाय कथम् अन्यत्र गन्तव्यम् ?

नीलाम्बरः—प्रिये अधुना न मे रोचते एतत् नगरं यत्र वेदाध्ययनशब्देन भिद्यन्ते कर्णाः, आज्यगन्धेन त्रुट्यति घ्राणं, यज्ञधूमेन पीड्यन्ते अक्षीणि । नास्ति अवसरः अस्माकं गीतनृत्यानां पानगोष्ठीनां कृते ।

नीला—यद्येवं त्वरस्व स्वमित्रैः सह पलायामहे । तत्र गमिष्यामः यत्र न कोऽपि राजा अस्माकं क्रीडासु कोपदृष्टिं पातयिष्यति ।

तृतीयं दृश्यम्

सुगन्धा— धर्माध्यक्ष महाभाग ! भवत्प्रयासैः राष्ट्रे सर्वे आगमनिगमानुयायिनः परस्परवैरभावं विहाय स्नेहेन निवसन्ति इति सन्तोषस्य विषयः । अस्मिन् सत्रे कति विद्यार्थिनः ब्रह्मचारिणः अस्मत्कोषात्छात्रवृत्तिं ग्रहीष्यन्ति ?

सङ्कर्षणः—स्वामिनि, पञ्चसहस्रं विद्यार्थिनः । सहस्रब्रह्मचारिभ्यस्तु अद्यैव वस्त्राणि पुस्तकानि च प्रदत्तानि । सर्वेषां ब्रह्मचारिणां कृते अन्नसत्रं तु पूर्वमेव प्रचलति ।

सुगन्धा—कति वेदपाठिनः स्वर्णदानेन सम्भाविताः ?

सङ्कर्षणः—पञ्चाशत् देवि । गतमासे द्वाभ्यां वरिष्ठब्राह्मणाभ्याम् अग्रहाराः प्रदत्ताः ।

सुगन्धा—एकस्य बौद्धविहारस्य पुनरुद्धारवार्ता आसीत् ।

सङ्कर्षणः—आम्, तस्य विहारस्य पुनरुद्धारस्तु बुद्धजन्मोत्सवात् पूर्वमेव कारितः अस्माभिः । शैवमठेऽपि उपासकेभ्यः पूजागृहं निर्मितं भवत्याः आदेशानुसारम् ।

सुगन्धा—शोभनम् । महाराजेन धर्मकार्याणां व्यवस्थाया मयि निक्षिप्ता । भवत्साहाय्येन एव सा सम्यक् चलिष्यति ।

सङ्कर्षणः—धर्मकार्याणां व्यवस्था तु सम्यक् चलति परम्—

सुगन्धा—परं किम् ? निश्शङ्कं कथयतु अत्रभवान् ।

सङ्कर्षणः—धनार्जने रताः कतिपया उच्चपदाधिकारिणः प्रजाहितम् उपेक्ष्य स्वार्थं चिन्तयन्ति, महाराजं च स्वानुकूलं कुर्वन्ति । अतः प्रजासु क्षोभः प्रसरति ।

प्रियंवदा—जयतु स्वामिनि ! भट्टिनि, योगेश्वरीमहाभागा समायाता ।

सुगन्धा— सादरं प्रवेश्यताम् । धर्माध्यक्षमहाभाग ! स्वनियोगमशून्यं करोतु अत्रभवान् ।

सङ्कर्षणः—गच्छामि धर्मकार्याय ।

(योगेश्वरी प्रविशति)

सुगन्धा—प्रणमामि योगाचार्याम् ।

योगेश्वरी—सुगन्धे ! आत्मानन्दं लभस्व । महता कालेन स्मृतिपथं नायाताहम् ।

सुगन्धा—आर्यायाः स्मरणं तु प्रतिदिनं करोमि परं ध्यानसाधनाविघ्नभयात् भवत्यै कष्टं न ददामि । भगवती न केवलं मम बालसहचरी अपितु आचार्य-पथप्रदर्शयित्री अपि वर्तते ।

योगेश्वरी—सुगन्धे अहं तु सख्यभावेन त्वत्समीपम् आगच्छामि । कश्मीरस्य राज्ञी भूत्वापि त्वया बाल्यस्य मित्रता न विस्मृता इति औदार्यं तव हृदयस्य । आस्ताम् इयं चर्चा । प्रकृतम् अद्य किं वर्तते ?

सुगन्धा— भवत्याः सङ्कर्षणधैर्यराशिभहाभागयोश्च प्रयत्नैः राज्ये विभिन्नाः धार्मिकविवादास्तु समाप्तिं गताः । नीलाम्बरा अन्ये च दुष्प्रवृत्तिगामिनः देशाद् बहिर्निष्कासिताः ।

योगेश्वरी—जानेऽहम् ।

सुगन्धा—परमेभिः कार्यैः केचित् अधिकारिणः मह्यं कुप्यन्ति इति सूचितं गुप्तचरैः ।

योगेश्वरी—त्वं खलु कर्तव्यपालने निर्भया धीराच । **न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः** । महाराजः अवश्यमेव अस्मिन् विषये बोधयितव्यः ।

सुगन्धा—महाराजस्तु विजयलिप्सया अधिकं कालं राष्ट्राद् बहिरेव युद्धेषु यापयति । युद्धेषु महान् धनव्ययो भवति । ये ये अधिकारिणः महाराजाय प्रभूतं धनं ददति ते कररूपेण उत्कोचरूपेण च प्रजाभ्यः दशगुणं धनमाकर्षन्ति । परं ते महाराजस्य प्रियाः विश्वासभाजनानि च भवन्ति । महाराजः तेषामेव अभिमतं स्वीकरोति ।

योगेश्वरी—अनेन प्रकारेण राष्ट्रे भ्रष्टाचारः वर्धिष्यते । न्यायव्यवस्था दूषिता भविष्यति ।

सुगन्धा—एतस्मात् कारणात् एव अहं चिन्तिता अस्मि । राजसंवाहनामकस्य नूतनकराधानस्य सूचना मया ह्यः एव प्राप्ता । निर्धना जना अनेन करभारेण भृशं पीडिता भविष्यन्ति इति विचिन्त्य राजकुमारः गोपालः तन्निवृत्त्यर्थम् अद्य प्रातः पितुः सकाशं गतोऽस्ति ।

योगेश्वरी—युक्तमिदं महाराजस्य अवन्तिवर्मणः पौत्रस्य । प्रजानां कष्टं विलोक्य स विषीदति इति समुचितमेव ।

(प्रविश्य)

प्रियंवदा—भट्टिनि ! राजकुमारो गोपालः मातुर्दर्शनमिच्छति ।

सुगन्धा—प्रविशतु स्वैरम् ।

प्रियंवदा—यथा आज्ञापयति देवी ।

(गोपालस्य आगमनम्)

गोपालः—मातः प्रणमामि । अहो ! आचार्या महाभागापि समुपस्थिता । आचार्ये ! एष गोपालः अत्रभवतीः प्रणमति ।

योगेश्वरी—वत्स ! प्रजावत्सल ! यशस्वी वर्चस्वी भव ।

सुगन्धा—वत्स, अपि तव प्रार्थना पितृपादैः स्वीकृता ?

गोपालः—किमपि वक्तुं न उत्सहे ।

सुगन्धा—आचार्यायाः समक्षं कथय सर्वम् । एताः अस्माकं समस्यानां समाधानं करिष्यन्ति ।

गोपालः—मया यदा प्रजायाः कष्टकरी परिस्थितिः पितुः समक्षम् उपस्थापिता तदा विहस्य एव तातेन कथितम्—वत्स ! अहं तु करनिवृत्तिं कर्तुं न क्षमे । त्वं यदा राजा भविष्यसि तदा मदपेक्षया गुरुतरैः करसंग्रहैः प्रजा न पीडयेः । अमात्यानाम् उपस्थितौ अपहसितः लज्जितः अहं प्रत्यावृत्तः ।

योगेश्वरी—वत्स विश्रब्धो भव । त्वया तु प्रजाहिते स्वकर्तव्यपालनं कृतम् । नैष लज्जाविषयः । तव माता सुगन्धा तव पितरं न्याय्यं मार्गं प्रदर्शयितुं क्षमते । सुगन्धे ! स्वनीतिपूर्णवचनैः महाराजं बोधयितुमर्हसि ।

गोपालः—मातः पितृपादास्तु श्व एव विजययात्रायै गमिष्यन्ति ।

सुगन्धा—तदाऽहमपि तव पित्रा सह युद्धयात्रायै गमिष्यामि । सुदीर्घे मार्गे वार्ताया अवसरं प्राप्स्यामि ।

योगेश्वरी—शोभनः विचारः । वत्स ! त्वं गत्वा पितरं मातुरिच्छां निवेदय ।

चतुर्थं दृश्यम्

(पर्वतोपत्यकायां सैनिकस्कन्धावारः)

सुगन्धा—(स्वगतम्) किं करवाणि ? न कापि औषधिः शमयति महाराजस्य रोगम् ।

शङ्करवर्मा—प्रिये सुगन्धे ! कुत्र असि त्वम् ?

सुगन्धा—इयम् अस्मि महाराज ! इयम् आगता भवतः पार्श्वे ।

शङ्करवर्मा—हा कष्टं विषबाणस्य प्रभावः प्रसरति शरीरे । प्रिये ! नेत्रयोः अन्धकारः वर्धते । त्वां द्रष्टुम् अपि न पारयामि । ज्वलति हस्तपादम् । जलं देहि, देहि जलम् ।

सुगन्धा—गृह्यतां शान्तिकरं जलम् ।

शङ्करवर्मा—अवरुद्ध इव कण्ठः । प्रिये अन्तकालः मे समीपमागतः ।

सुगन्धा—किमर्थम् अशुभं भणति महाराजः ? भवान् शीघ्रमेव स्वस्थः भविष्यति । वैद्यराजस्य औषधिः प्रभावं दर्शयिष्यति ।

शङ्करवर्मा—अन्तकस्य समक्षं कीदृशी औषधिः ? हा कष्टम् ! शत्रून् विजित्य अपि दैवेन पराजितः अस्मि ।

सुगन्धा—नाथ ! शीघ्रम् एव शल्यवेदना लघ्वी भविष्यति ।

शङ्करवर्मा— महतीं शल्यवेदनाम् अनुभवन् अद्य असंख्यसैनिकानां पीडाम् अनुभवामि ये मम विजयलिप्सया युद्धेषु शस्त्राहता विकलाङ्गीभूताः । हा हा दर्शनसामर्थ्यवञ्चितः मानसनेत्रैः अहं क्रन्दमानाः विलपन्तीः शतं नारीः पश्यामि यासां जीवनाधाराः पतयः युद्धेषु हताः । मया निष्कारणं या हिंसा कृता तस्याः फलं भोक्तव्यम् एव ।

सुगन्धा—महाराज प्रचण्डे प्रभंजने शान्ते सति वयं कश्मीरभूमिं गमिष्यामः । तत्र तु समुचितचिकित्सया अत्रभवान् स्वास्थ्यं लप्स्यते ।

शङ्करवर्मा—प्रिये ! यथा अहं पश्यामि जीवितः अहं मातृभूमेः स्पर्शं कर्तुं न शक्ष्यामि । मृतस्य मम शरीरस्य दाहक्रिया कश्मीरभूमौ क्रियताम् इति मे अन्तिमा इच्छा ।

सुगन्धा—महाराज स्वयमेव तत्र गत्वा प्रजाः पालयिष्यति ।

शङ्करवर्मा—अन्यद् अपि मे अभीष्टं करणीयम् । प्रजापालनस्य भारः गोपालेन सह त्वया वोढव्यः ।

सुगन्धा—नाथ भवता विना न अहं जीविष्यामि । मम जीवनदीपः भवत्स्नेहेन एव ज्वलति । भवदभावे तैलरहिता वर्तिका इव क्षणे भस्मीभूता भविष्यामि ।

शङ्करवर्मा—जाने, मयि ते अपरिमिता प्रीतिः । परं जीवनं धारयित्वा मम कार्यं करिष्यसि इत्येव यथार्थः अनुरागः ।

सुगन्धा—नाथ ! अत्रभवन्तं विना नास्ति मे जीवनस्य प्रयोजनम् ।

शङ्करवर्मा—प्रिये ! जीवनात् पलायनं तु कातराः कुर्वन्ति । त्वं तु वीरपत्नी असि, वीरमाता असि, वीरशासिका भूत्वा त्वं प्रजाः पालयिष्यसि । गोपालः बालः अस्ति, तस्य संरक्षणं त्वया कर्तव्यम् । तस्य विचाराः उदात्ताः परं मम मतिः कतिपयैरधिकारिभिर्विपरीता कृता अतः अहं सुयोग्यपुत्रम् अपि उपेक्षितवान् ।

सुगन्धा—पुत्रे तु भवतः अधिकारः वर्तते । किमर्थं ग्लानिम् अनुभवति भवान् ?

शङ्करवर्मा—सुगन्धे ! अनेकशः तव सत्प्रेरणा अपि मया उपेक्षिता । प्रिये ! अपराधाः मे क्षन्तव्याः । त्वं विदुषी असि, नीत्यां पारङ्गता असि, प्रजावत्सला असि । राष्ट्रे दुर्नीतिवशात् यः भ्रष्टाचारः प्रवर्तते तं दूरीकर्तुं समर्था असि । अमात्येषु प्रभाकरदेवः नीतिज्ञः विश्वसनीयः च अस्ति । तस्य साहाय्येन शासनस्य भारः गोपालेन सह त्वया वोढव्यः ।

सुगन्धा—अधिकं वक्तुं न अर्हति भवान् । अनेन कष्टं वर्धते । वैद्यराजम् आह्वयामि ।

शङ्करवर्मा—नहि, वैद्यराजस्य नास्ति अवसरः अयम् । वक्तुं कालः अपि स्वल्पः अवशिष्टः अतः यावद् वक्तुं क्षमे तावत् उक्त्वा हृदयशल्यम् अपनेष्यामि । प्रिये मया प्रदेशाः विजिता न तु प्रजामनांसि । त्वया कल्याणकारिकर्मभिः तत् कर्तव्यम् । आ-आ- सुगन्धे त्वत्सुगन्धसुगन्धितानि भवेयुः प्रजामनांसि इति विश्वासेन गच्छामि परलोकम् । आ-आ-आ ।

सुगन्धा—महाराज ! महाराज ! किं सत्यम् एव गतः मां विहाय !

(क्रन्दनध्वनिः)..... (स्वगतम्)

नहि, नहि न अयं रोदनस्य कालः । मम धैर्यपरीक्षायाः कालः उपस्थितः । महाराजस्य देहावसानस्य वृत्तान्तः न केनापि ज्ञातव्यः अन्यथा सैनिकेषु विप्लवः भविष्यति । केवलं सेनाध्यक्षम् आहूय यात्राया योजना विधेया ।

पञ्चमं दृश्यम्

रिल्हणः— मित्र दुर्घट ! यस्माद् दिनात् राज्ञी सुगन्धा राज्यप्रबन्धं निरीक्षितुं प्रारब्धवती, तस्माद् दिनात् वयं निर्धनाः शक्तिहीनाः सञ्जाताः । न कोऽपि ग्रामणी मह्यम् उत्कोचं ददाति । त्वदीयः वृत्तान्तः कीदृशः ?

दुर्घटः—गता हि ते दिवसा यदा कायस्थानीतैः घृतघटैः गृहं मे पूरितम् अभवत् । इदानीं तु हाकशाकमपि हाटके क्रीणामि ।

रिल्हणः—कश्चिद् उपायः चिन्त्यताम् । प्रभाकरदेव एव प्रमुखकण्टकः अस्माकं मार्गे । स विश्वासभाजनं राज्ञ्याः प्रजानां च । स एव कथमपि दूरी-कर्तव्यः ।

दुर्घटः—नास्ति कठिनः उपायः । गोपालस्तु अनुभवहीनः । तस्य बालहृदये प्रभाकर-देवमधिकृत्य सन्देहः उत्पादनीयः ।

रिल्हणः—युक्तं भणसि । परं प्रभाकरदेवे कर्तव्यपरायणे सति कीदृशः दोष अन्वेष्टव्यः ?

दुर्घटः—राजकीयधनस्य अपव्ययस्य । सुगन्धाप्रभाकरदेवयोः चरित्रस्य विषये कापि कथा रचयितव्या ।

रिल्हणः—प्रजासुखे सुखं राज्ञः इति यथार्थं करोति सुगन्धा । सर्वे प्रजाजनाः तस्यां विश्वसन्ति । न कोऽपि अस्मद् वचनं प्रमाणं मंस्यते ।

दुर्घटः—(विहस्य) यदि अग्निपरीक्षामुत्तीर्णायाः सीतायाः विषये जनानां हृदयेषु सन्देहः अजायत, तदा तु अस्मिन् कलियुगे विधवानारीमधिकृत्य कलङ्कोत्पादने किं कष्टम् ? सुगन्धाप्रभाकरदेवेऽनुरक्ता आसीत् अत एव शङ्करवर्मणि दिवङ्गते सति पतिचितायाम् आत्मानं न दग्धवती इति प्रवादः प्रसारयितव्यः ।

रिल्हणः—यदि गोपालवर्मणः हृदये सन्देहः न जायते तर्हि. ......

दुर्घटः—तदा तु गोपालवर्मा कण्टकः निष्कासयितव्यः । अस्मिन् कार्येऽपि प्रभाकर-देवस्य उपरि दोषारोपणं स्यादिति प्रबन्धः अपि मया सम्यक् कृतः ।

रिल्हणः—मित्र, तव बुद्धिस्तु असुरगुरोः शुक्रस्य बुद्धिमतिशेते । गच्छामः योजनां सफलीकर्तुम् ।

षष्ठं दृश्यम्

योगेश्वरी—सुगन्धे धैर्यं धारय । स्वसहनशीलतायाः प्रमाणं देहि ।

सुगन्धा—आचार्ये ! नास्ति कोऽपि सीमा अस्याः सहनशीलतायाः । मम जीवन-पुस्तके तु प्रतिदिनं पीडायाः नूतनः अध्यायः लिख्यते । गहने वने मया पत्युः मृत्युः दृष्टः परं राज्यस्थैर्यभङ्गभयात् षड्दिवसपर्यन्तं रोदितुम् अपि न अपारयम् । स्वहृदयं पाषाणीकृत्य वैधव्यम् अपि मर्षितम् । परं पुत्रस्य मृत्युना सर्वा मम आशा भग्ना । कथं सह्यः वज्रपातः अयम् ।

योगेश्वरी—जाने ते महतीं व्यथां परं धैर्यस्य परीक्षा तु विपदि एव भवति । विपदां सहिष्णुः एव मानवः दिव्यगुणैर्विभूषितः भवति । पुत्रस्ते यौवने पञ्चत्वं गतः परं नैकेषां दीर्घतरेभ्यः धूमायितजीवनेभ्यः तस्य प्रकाशमानं लघु जीवनं श्रेयः आसीत् ।

सुगन्धा—आचार्ये ! जडीकृता मे बुद्धिः । निष्फलं मे जीवनम् ।

योगेश्वरी—सखि क्व गतं सकलं ते शास्त्रज्ञानम् । क्व गता ते अभिन्नसहचरी धीरता ।

प्रियंवदा—(अन्तः प्रविश्य) स्वामिनि ! धैर्यराशिमहाभागः समागतः ।

सुगन्धा—सादरं प्रवेश्यतां प्रियंवदे !

योगेश्वरी—समुचिते काले आगमनं महाभागस्य ।

धैर्यराशिः—महाराज्ञि ! अद्य अस्मद् आश्रमे क्रन्दमाना एका युवती त्रीन् शिशून् नीत्वा समागता । तस्याः पतिः सहसा आत्महत्यां कृतवान् । मृत्योः प्राक्

तेन एकं पत्रम् अत्र भवत्यै लिखितम्। तस्य पत्नी पत्रम् इदं मह्यं समर्पितवती, अवलोकयतु अत्रभवती।

सुगन्धा—भवान् एव वाचयतु।

धैर्यराशिः—अत्र लिखितम् अस्ति **मान्ये मातः! पञ्चदिवसपूर्वं मया यत् कुकृत्यं कृतं तस्य ज्वाला माम् अहर्निशं दाहयति।** अद्य विषपानं कृत्वा तां ज्वालां शमं नेष्यामि। परं मरणात् पूर्वं निवेदयितुम् इच्छामि यत् राजकुमारवध- षड्यन्त्रः रिल्हणदुर्घटयोः आसीत् न तु प्रभाकरदेवामात्यस्य यथा दुष्टैः प्रवादः प्रसारितः। भार्या मे कुकृत्यं न जानाति। जीवनकाले अहं तस्यै प्रभूतं कष्टं दत्तवान्। मम मृत्योः अनन्तरम् अपि सा राजकुमारस्य हन्तुः पत्नी इति स्वशिशुभिः सह कलङ्किता दण्डिता च भविष्यति इत्येव तस्याः नियतिः इति निवेदयामि मन्दभाग्यः पापी रामदेवः।

योगेश्वरी—निर्दोषः प्रभाकरदेवः मिथ्यापवादान् मुक्तः।

सुगन्धा—अहो मम शासनम् असहमानैः दुर्घटादिभिः पुत्रः मे यमसदनं प्रेषितः। ते तु यथान्यायं दण्डनीयाः। परं रामदेवस्य निरपराधिनी पत्नी न दण्ड्या। आचार्ये! सा शिशुभिः सह अत्रभवत्याः आश्रमे निवसतु। तस्याः शिशूनां पालनं राजकोषात् भवतु इति मम निर्णयः।

धैर्यराशिः—महती उदारता महाराज्ञ्याः।

सुगन्धा—अन्यद् अपि करणीयम्। परश्वः पौरजानपदानाम् अमात्यानां च सभा समायोज्यताम्। राज्यसञ्चालनस्य भारः अस्मत्सम्बन्धिषु केन वोढव्यः इति निर्णेतव्यम्। अहं तु आचार्याया आश्रमं गत्वा अवशिष्टं जीवनम् ईशभक्त्यां यापयितुम् इच्छामि।

धैर्यराशिः—क्षम्यतां महाराज्ञि! सङ्कर्षणादयः सर्वे अधिकारिणः अमात्याः पौरजानपदाः च प्रासादात् बहिः अत्रभवतीं प्रार्थयितुं सङ्गता यत् प्रजाः भवत्याः शासनम् एव इच्छन्ति इति।

योगेश्वरी—सुगन्धे ! जीवनस्य रणक्षेत्रात् पलायनं त्वत्कृते न शोभते । गोपालवर्मा स्वकर्तव्यं पालयन् एव स्वर्गं गतः । त्वया कर्तव्यबुद्ध्या प्रजाः प्रजाः इव पालयितव्याः । महाधीरे ! **क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ** ।

सुगन्धा—सत्यं वदति अत्रभवती । भावनायाः कर्तव्यमधिकतरं श्रेयस्करम् । अत्रभवत्याः आदेशः प्रजायाः च इच्छा मया शिरोधार्या ।

॥ समाप्तेयं सुगन्धा ॥

द्राक्षामतः शकुन्तला

कथासार

डेनमार्क के प्रसिद्ध कवि होल्कर द्राखमैन ने शुकन्तला शीर्षक कविता १८७६ ईस्वी में लिखी थी। उस कविता से प्रेरणा पा कर लिखा गया यह रूपक होल्कर द्राखमैन के जीवन की कुछ घटनाओं पर आधारित है। कवि ने अपनी गर्भवती पत्नी को त्याग दिया था। उसी पत्नी की मधुर स्मृति में लिखी उस की कविता भारत के महाकवि कालिदास के प्रभाव को प्रकट करती है।

प्रथम दृश्य में विलीना (विल्हेल्मिन) अपनी दो सखियों चारुलता और शालिनी के साथ समुद्रतट पर भ्रमण कर रही है। कवि द्राक्षामान् (होल्कर द्राखमैन) के प्रति उस का प्रेम सखियों को ज्ञात है। द्राक्षामान् को भी विलीना पर अनुरक्त जान कर वे दोनों को परस्पर निकट लाने का प्रयास करती है। बातचीत से पता चलता है कि द्राक्षामान् का पिता तो उसे डाक्टर बनाना चाहता है। परन्तु उस की रुचि केवल साहित्य में है। विलीना के विचारों को अपने अनुकूल पा कर कवि उस के समक्ष प्रणय प्रस्ताव रखता है। समुद्रतट की महत्ता का वर्णन करते हुए दोनों प्रेमी प्रेमिका जलनिधि को ही अपने प्रणय का साक्षी मानते हैं।

द्वितीय दृश्य में शालिनी सूचना देती है कि विलीना और द्राक्षामान् का विवाह सम्पन्न हो गया है। वे दोनों अपनी मधुयात्रा का वृत्तान्त शालिनी को सुनाते हैं। द्राक्षामान् बताता है कि पिता के बहुत मना करने पर भी उस ने पत्नी सहित इंग्लैण्ड जाकर कोई काम ढूँढने की योजना बना ली है। शालिनी शुभकामनाओं सहित उन्हें विदाई देती है।

तृतीय दृश्य में इंग्लैण्ड में रह रहे द्राक्षामान् और विलीना की आर्थिक कठिनाइयों का वर्णन है । गर्भवती पत्नी को अकेली छोड़कर आजीविका की खोज में गया द्राक्षामान् दो सप्ताह बाद घर लौटा है । विलीना पीछे सीढ़ियों से गिर गई थी । परन्तु द्राक्षामान् के एक मित्र की सहायता से बच गई । द्राक्षामान् को एक पत्रिका के कार्यालय में नौकरी मिली है । परन्तु उसे दिन रात पत्रिका की स्वामिनी के साथ वहीं रहना पड़ता है । इस बात से पत्नी नाराज़ हो जाती है । आरोपों प्रत्यारोपों से कलह बढ़ती है तथा अन्त में दोनों विवाहविच्छेद का निर्णय ले लेते हैं । विलीना स्वदेश लौट जाती है ।

चतुर्थ दृश्य में पत्रिका की स्वामिनी मोनिका का द्राक्षामान् के साथ विवाद दिखाया गया है । वह दिन रात कवि का शोषण करती है जिस का विरोध करते हुए कवि उस के कार्यालय से त्यागपत्र दे देता है ।

पञ्चम दृश्य में कुछ वर्ष बाद की घटना का वर्णन है । म्यूनिख नगर में महाकवि कलिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल का अभिनय देख कर द्राक्षामान् भावविभोर हो जाता है । शकुन्तला में विलीना और दुष्यन्त में अपना प्रतिबिम्ब देखकर व्याकुलता से वह रात भर सो नहीं पाता । अपने मित्र पाल को वह बतात है कि प्रिय पत्नी विलीना का उसने परित्याग तो कर दिया था परन्तु वह हृदय से उसे कभी भुला नहीं पाता । दुष्यन्त ने तो शकुन्तला को पुन: प्राप्त कर लिया था परन्तु उस की प्रिया तो उसे कभी नहीं मिलेगी यद्यपि वह उस की कविताओं में सदैव बसती है । अन्त में मित्र के आग्रह पर वह अपनी कविता शकुन्तला की पंक्तियां मित्र को सुनाकर मन की व्यथा शान्त करने का प्रयास करता है । वह मित्र पाल को यह भी बताता है कि एक वही नहीं डेनमार्क के अनेक साहित्यकार भारत के महाकवि कालिदास से प्रभावित हैं ।

पुरन्ध्रीपञ्चके पञ्चमं रूपकम्

द्राक्षामतः शकुन्तला

प्रथमं दृश्यम्

विलीना—सखि चारुलते ! अम्बोधिरयं कियान् शान्तः गम्भीरश्च दृश्यते अद्य । कोऽपि कथयितुं न शक्नोति यदनेन स्वहृदये दन्दह्यमानः अनलः निगूढः इति ।

चारुलता—विलीने ! सत्यं वदसि परं जानासि किं यदयं समुद्रस्त्वमिव गभीरः । तव हृदयेऽपि प्रणयाग्निः ज्वलति परं गम्भीरा त्वं नैव प्रकटयसि । शालिनि ! त्वं कथं मन्यसे ?

शलिनी—द्राक्षामान् प्रतिदिनं स्वकाव्यमाध्यमेन प्रणयचषकं विलीनायै समर्पयति । परमस्मत्सखी न जाने किमर्थं न स्वीकरोति ?

विलीना—युवयोश्चापलं वर्धते प्रतिदिनम् । मया तु समुद्रस्य गाम्भीर्यस्य बाडवानलस्य च चर्चा कृता परं युवां प्रणयानलस्य कथां कर्तुं प्रारभेथे ।

शालिनी—सखि विलीने ! प्रणयस्तु जीवनस्य लक्षणम् । यस्य जनस्य हृदि प्रणयाग्निः न ज्वलति सः तु हिमवत् जडः । स्वप्रणयभावं निगूढं किं करोषि ?

चारुलता—अयं गम्भीरः समुद्रः अपि चन्द्रप्राप्त्यै उल्लोलकल्लोवान् भवति ।

शालिनी—तव नेत्रयोः भाषां पठितुं शक्नुवः ।

विलीना—युवां विहाय कस्मै स्वचित्तभावं कथयेयम् ? द्राक्षामतः सौन्दर्येण कवित्वेन च प्रभावितः अहं तस्मिन् अनुरक्ता । तस्य काव्यरसं पीत्वा-पीत्वा मम चेतसः तृषा वर्धते एव । तम् अवलोक्य कीदृशः प्रणयभावः हृदि उत्पद्यते इति त्वत्पुरः परिभाषितुं न शक्यते मया ।

शालिनी—जानीवः सर्वम् ! युवयोः प्रणयग्रन्थिं दृढीकर्तुं शीघ्रं यतिष्यावहे ।

चारुलता—नेदं दुष्करम् । दूरादेव आगच्छन्तीं नयनविषयीभूतां विलीनां प्रति द्राक्षामतः मधुरा दृष्टिसम्पाताः मया अनेकशः अवलोकिताः । काव्यरसतृषिता इयम् । सोऽपि काव्यरसपूरितं घटं प्रदातुम् आकुलः । द्राक्षामान् इव समानधर्मा अनया कुत्रापि न प्राप्स्यते ।

शलिनी—त्वं व्यवहारकुशला असि चारुलते ! विलीनायाः प्रणयसन्देशं प्रापयितुं कार्यं च साधयितुं त्वमेव पारयसि । पश्य अद्य द्राक्षामान् एकाकी समुद्रतटं गच्छन् दृश्यते । त्वरस्व अवसरोऽयं कार्यसिद्धये अनुकूलः प्रतीयते ।

चारुलता—गच्छामि पूर्वभूमिकां प्रस्तोतुम् । किञ्चित् कालानन्तरं विलीनया सह तत्र त्वया आगन्तव्यम् ।

(द्राक्षामान् गीतं गायन् आगच्छति)

कियन् मनोज्ञं तव सामीप्यं

कुरुते आह्वानम् ।

तरलतरङ्गे जीवनतरणीं

तारयति मन्दम्

प्रणयाकुलं मानसं नयति

सुखस्यसोपानम् ।

गीतेषु मे तव मधुस्मरणं

कुरुते रसपरिपाकं
मम लघुगीतं लघ्वी पङ्क्तिः
भजते महिमानम्।

चारुलता—सखे द्राक्षामन्! कस्य सामीप्यमभिलषसे? कस्य कृते इयत् कर्णमधुरं गीतं गायसि?

द्राक्षामान्— सागरमधिकृत्य गायामि, सागरमेव श्रावयामि। यदा कदा चर्चस्य मृतकोद्यानं गत्वा पञ्चदशवर्षेभ्यः तत्रैव चिरनिद्रायां शयानां मातरमपि श्रावयामि। शैशवे मम बालगीतानि श्रुत्वा सा अतीव उल्लसिता अभवत्। ते हि नो दिवसाः गताः।

चारुलता—इदानीं रोचन्ते अस्मभ्यं तव गीतानि। विशेषतः अस्मत्सखी विलीना आत्मानमपि विस्मरति।

द्राक्षामान्—धन्योऽहम्। किं सत्यमेव विलीना मम काव्ये अनुरक्ता?

चारुलता—न केवलं तव काव्ये परं त्वयि अपि। त्वं तु तस्यै काव्यचषकं समर्पयसि परं तया तु हृदयं समर्पितम्। कीदृशः कविरसि त्वं? हृदयम् एव जानाति हृदयस्य प्रणयभावम् परं त्वया स्वप्रियायाः हृदयनिहिता प्रणयवेदना न अनुभूता।

द्राक्षामान्—तव सख्याः कटाक्षशरैः विद्धः अहर्निशं विरहवेदनामनुभवामि। यदा तीव्रतां गता वेदनेयं मया सोढुं न शक्यते तदा कविताद्वारेण अधरमायाति।

चारुलता—कविमहोदय! शालिन्या सह इत एव आगच्छति तव हृदयसम्राज्ञी। अद्य अवश्यमेव विवाहस्य प्रस्तावः प्रस्तोतव्यः अन्यथा तवोपेक्षाम् अनुमीय तस्याः हृदयतन्त्री भग्ना भविष्यति।

द्राक्षामान्—चारुलते! उपकृतोऽस्मि त्वया स्वसख्याः रहस्योद्घाटनेन। मम नैराश्यान्धकारः आशारश्मिभिः दूरीकृतः। तवसखीमाराध्य जीवनसाफल्यं प्राप्स्यामि इति मन्ये! अहो आगते ते। स्वागतं सख्यौ।

शालिनी—सखे द्राक्षामन् ! अद्य बहुदिवसानन्तरं दृष्टिपथमायातः असि । अपि कुशलं सर्वं गृहे ?

द्राक्षामान्—आम् कुशलं सर्वं परं गतदिवसेषु तातेन सह विवादः प्रचलितः

चारुलता—किमर्थम् ?

द्राक्षामान्—काव्याध्ययने ममाभिरुचिः तस्मै न रोचते । आयुर्विज्ञानशिक्षामधिकृत्य तस्य इच्छापूर्तिं कर्तुं नहि शक्नोमि । सः तु ममाभिरुचिम् उपेक्ष्य वारं वारं माम् आयुर्विज्ञानशिक्षां ग्रहीतुं प्रेरयति यतो हि द्राक्तराः प्रभूततरं धनमर्जयितुं समर्थाः ।

शालिनी—पितरः सदैव सन्तत्याः हितं चिन्तयन्ति ।

विलीना—हितचिन्तने सन्तत्या भावानाम् उपेक्षा न कर्तव्या ।

चारुलता—विलीने ! सत्यं वदसि त्वम् । यदि पिता पुत्रस्य इच्छां निराकृत्य केवलं स्वेच्छां तस्योपरि प्रसभम् आरोपयति तदा सः कीदृशं हितं साधयति सन्तत्याः ?

द्राक्षामान्—मया तु स्पष्टीकृतं पित्रे यदहं स्वलेखनीं विहाय द्राक्तरस्य कर्तनच्छुरिकां न ग्रहीष्यामि । जनेभ्यः काव्यरसं पाययिष्यामि न तु कटुम् औषधम् । साहित्यकारः अपि भोजनवस्त्राणि तु प्राप्नुवन्ति एव समाजे । विलीने ! कथं वा मन्यसे त्वम् ?

विलीना—यथाहं पश्यामि साहित्यक्षेत्रमपि समाजस्य कृते महत्त्वपूर्णं विद्यते । आयुर्विज्ञानवेत्तारः जनानां शरीराणि शोधयन्ति परं साहित्यकारास्तु तेषां मनांसि संस्कुर्वन्ति । **मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः** । यथा द्राक्तरः समाजे सम्मानम् अर्हति तथैव साहित्यकारः अपि ।

द्राक्षामान्—विलीने प्रिये ! त्वं तु मदीयहृदयस्य भावान् प्रकटीकरोषि । जानीषे मम हृदयम् इति प्रतीयते । तव वचनैः उत्साहितः किञ्चिद् याचितुमीहे यतो हि ॥

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।

चारुलता—उदारहृदया अस्माकं सखी याचकस्य प्रार्थनां सफलां करिष्यति ।

द्राक्षामान्—विलीने ! यदि दित्ससि तदा तव पाणिं ग्रहीतुम् इच्छामि । पित्रे मे साहित्यकर्म रोचते न वेति नास्ति मे चिन्ता । त्वां सहचरीं प्राप्य प्राप्स्यामि यत् प्राप्तव्यं जीवने ।

विलीना—अभिनन्दामि स्वमनोरथपूर्तिम् ।

चारुलता—शोभनम् ! शोभनम् ! कविवर ! स्वीकृतः तव प्रस्तावः सख्या । त्वं प्रतिदाने किं दास्यसि ?

द्राक्षामान्—हृदयादधिकतरं बहुमूल्यं वस्तु नास्ति किञ्चित् । तत्तु मया पूर्वमेव तव सख्यै समर्पितम् । तत्तु स्वीकृतं तया अद्य इति मुदितः अस्मि ।

शालिनी—मुदिताः स्मः वयं सर्वे । यथाहं पश्यामि तव पिता विलीनां पुत्रवधूरूपेण प्राप्य हर्षितः भविष्यति । सखि चारुलते ! आगच्छ, आवां द्राक्षामतः पित्रे इमं शुभं समाचारं श्रावयावः । तस्य प्रतिक्रियां ज्ञात्वा द्राक्षामते कथयिष्यावः ।

चारुलता—अथ किम् ! मया आपणे कानिचिद् वस्तूनि अपि क्रेतव्यानि ।

द्राक्षामान्—चारुलते ! अस्मत्कृते विवाहोपहारः अपि क्रेतव्यः कश्चित् ।

चारुलता— समुचिते अवसरे उपस्थिते अवश्यमेव प्राप्स्यथः । विलीने त्वमत्र स्थित्वा द्राक्षामते स्वीयां नवीनां काव्यरचनां श्रावय, आवां साधयावः ।

विलीना—जाने युवयोः कौशलम् ।

द्राक्षामान्— गच्छतं कार्यसिद्धये । विलीने ! आवामपि जलनिधेः तटे सुखम् उपविशावः ।

विलीना—जलनिधेः सामीप्यं सन्तर्पयति माम् ।

द्राक्षामान्—प्रिये: अम्बोधि: अयम् अवलम्ब: अस्माकं धेनुमार्गीयाणाम् । अस्योत्सङ्गे एव अस्माकं शैशवं यौवनं च वितनुत: ।

विलीना—अयं स्मारयति अस्मान् साहसिकानां पूर्वजानां वीरगाथा: ये बहुकालाय निरन्तरं समुद्रयात्रां कुर्वाणा: द्वीपद्वीपान्तरेषु स्वकीर्तिं प्रसारितवन्त: ।

द्राक्षामान्—अयं जलनिधि: आवयो: प्रणयबन्धनस्य साक्षी भवेत् इति कृत्वा अद्य स्वकवितां श्रावय ।

विलीना—श्रावयामि पश्चात्, प्रथमं त्वं श्रावय ।

द्राक्षामान्—शृणु तावत्—

अहमस्मि सूक्ष्म: चषक:
चषकस्य आकारं मा द्राक्षी:
अस्योपरि लिखितं नाम मा द्राक्षी:
मधुना परिपूरितोऽयं चषक:
चषके निहितं जीवनदायि मधु पश्य
अहमस्मि विशाल: समुद्र:
पश्य समुद्रजले प्रतिबिम्बितं सूर्यम्
जले क्रीडन्त्य: सूर्यरश्मयो जनयन्ति हर्षम्
त्वमपि भव सहर्षा सोल्लासा
अहमस्मि वाद्ययन्त्रं
वादयति मां स्वामी वादक:
न जाने कथं न जाने किमर्थं
कम्पमाना: तन्त्र्य: ध्वनिमुत्पादयन्ति
यदि काष्ठं नास्ति दृढं मा चिन्तय

यदि यन्त्रमस्ति धूलिपूरितं मा चिन्तय
शृणु मधुरं ध्वनिं यो हृद्यो यश्च नन्दयति।

विलीना—प्रणयमधु पीत्वा कः पश्यति चषकम्?
प्रणयरागं श्रुत्वा कः पश्यति वाद्यम्?
अधुना स दिवस आयातः।
पुरो मदीयः प्रिय आयातः॥
लघ्वी लतिका महता फलिना
अद्य सङ्गता राका शशिना
प्रेममयोऽयं लोको जातः।
सम्प्रति मम हृदये तव वासः
त्वं मे रुदितं त्वं मे हासः
सारमयः संसारो जातः॥
प्रियतम! जीवनपथे चलावः
सुखदुःखयोश्च समौ भवावः
सहयात्री त्वं मे सञ्जातः॥

द्वितीयं दृश्यम्

शालिनी—चतुर्मासपूर्वं विलीनाद्राक्षामतोः शुभविवाहः सम्पन्नः। विवाहानन्तरं यदा तौ चर्चभवनाद् बहिरागतौ तदा तयोः हर्षाभिव्यक्तिः दर्शनीया आसीत्। द्राक्षामतः पितुः समीपे प्रभूतं धनं विद्यते परन्तु द्राक्षामान् साहित्यकर्मणि संलग्नः धनार्जनाय न यतते। विवाहानन्तरं तेषां जीवन-यात्रा कथं चलिष्यति इति ज्ञातुम् उत्कण्ठिता अस्मि। चारुलता तु प्रशिक्षणार्थं स्वमातुलसमीपे शर्मण्यदेशं गता। एकाकिनी एव अहं विलीनाद्राक्षामतोः कुशलवृत्तान्तं ज्ञातुं गच्छामि। इदं गृहद्वारम्।

(खट् खट् ध्वनिं करोति)

विलीना—स्वागतं सख्या: । चिरकालात् दर्शनं नहि दत्तम् ।

शालिनी—त्वं तु आवां विस्मृतवती इति कृत्वा स्वयमेव कुशलवृत्तान्तं ज्ञातुमागता ।

विलीना—द्राक्षामन् ! आगच्छ शालिनि ! आवां मिलितुमागता ।

द्राक्षामान्—अयमागच्छामि । स्वागतं स्वागतं सख्या: ।

विलीना—सखि आस्यताम् । पृच्छस्व द्राक्षामन्तम् । मधुयात्रायां कतिवारं त्वां चारुलतां च स्मृतवती ।

द्राक्षामान्—विलीने ! प्रथमं चायं दीयतां चायपानानन्तरं शृणोमि सख्यो: उपालम्भवार्ताम् ।

विलीना—एषा आनयामि शीघ्रम् । (बहिर्गच्छति)

शालिनी—द्राक्षामन् ! कीदृशी सफला आसीत् युवयो: मधुयात्रा ? कानि स्थानानि स्वचरणै: अलङ्कृतानि युवाभ्याम् ?

द्राक्षामान्—समुद्रयात्रा विलीनायै मह्यं च रोचते अत: कतिपयदिवसा: नौकाविहारे यापिता: । जलप्रवाहे मन्दं मन्दं चलन्ती तरणी गातुं प्रेरयति । विशाल-जलसमूहे दोलायमान: चन्द्रप्रतिबिम्ब: मातुरङ्के खेलन् पुलकित: शिशु: इव भृशं शोभते ।

शालिनी—धेनुमार्गाद् बहि: अपि गतवन्तौ ?

द्राक्षामान्—आम् । समुद्रदेव्या दर्शनं कृत्वा आवाम् इंग्लैण्डदेशं गत्वा लन्दननगरे सप्ताहद्वयं यावद् उषितवन्तौ । तत्र एकेन मित्रेण आमन्त्रितौ आवाम् । स तत्र वस्त्रनिर्माणयन्त्रालये कार्यं करोति । लन्दननगरी सुशिल्पिभि: निर्मिता, अनुपमप्रभा, अत्युच्चै: अट्टालकै: शोभिता नक्तंदिवं राजते । प्रतिदिनं समाजै: उत्सवै: सङ्गीतसम्मेलनै: नागरिकाणां मनोरञ्जनं विधीयते तत्र । अहं तु तत्रैव कार्यं कर्तुम् इच्छामि ।

(विलीना चायपात्राणि नीत्वा आगच्छति)

विलीना—चायं गृह्यताम् ।

शालिनी— धन्यवादाः ।

विलीना—मिष्टान्नमपि खादितव्यम् । मया स्वयं निर्मितम् ।

शालिनी—जाने, सुगृहिणी असि । द्राक्षामन् ! त्वमपि गृहाण ।

द्राक्षामान्—अवश्यं ग्रहीष्यामि । यदि लन्दननगरे किमपि कार्यं न लप्स्यते तदा विलीना अहं च मिष्टान्नापणं चालयिष्यावः ।

शालिनी—द्राक्षामन् ! किं त्वया स्वदेशं विहाय बहिः गन्तुं निर्णीतम् ?

द्राक्षामान्—आम्, न केवलं मया अपितु आवाभ्याम् । विलीनां विहाय कथं गम्यते कुत्रापि ? **यत्र गृहिणी तत्रैव गृहम्** । कथं वा मन्यसे शालिनि !

शालिनी—सुखेषु दुःखेषु सहभागिनौ युवाम् । विलीनाया हृदयं तव हृदये सङ्गत्य एकीभूतम् । अतः सा तु त्वया सह गमिष्यति एव । परं युवयोः विदेश-गमनं प्रति तव पितुः किं मतम् ?

द्राक्षामान्—स्नेहपाशेन बद्धेन तातेन आवाभ्यां विदेशगमनाय अनुमतिः अधुना यावन् न प्रदत्ता । तस्य कथनमस्ति यद् विदेशे जीवनयात्रा कुसुमशय्या नहि भवति, कण्टकाकीर्णा भवति ।

शालिनी—सत्यं वदति सः ।

द्राक्षामान्—मया ताताय इदं कथितं यद् गृहाद् बहिः गत्वैव मनुष्यः आत्मनः यथार्थं मूल्यं ज्ञातुं शक्नोति । विषमपरिस्थितीनां कल्पनया भीतः मानवः तु जीवने किमपि प्राप्तुं न शक्नोति । यत्र कुसुमानि वर्तन्ते तत्र कण्टकाः अपि सन्ति परं किं कण्टकभयेन कुसुमानि नहि चेतव्यानि ? किं निमज्जनभयेन सरसि नहि प्रवेष्टव्यम् ?

शालिनी—श्लाघ्या तव व्यवसायात्मिका बुद्धिः । यत् निर्णीतं तत् निर्णीतम् । मम शुभकामना युवाभ्यां समर्पिताः । मन्ये तव पिता अपि अनुमतिं प्रदास्यति ।

विलीना—सखि ! इतः दूरं गमिष्यन्त्याः मे हृदयं कम्पते ।

शालिनी—मा भैषीः । सर्वं मङ्गलं भविष्यति ।

विलीना—परिष्वजस्व माम् । न जाने पुनः कदा मिलिष्यावः ।

शालिनी—धेनुमार्गात् दूरं गच्छसि न तु सखीहृदयात् । द्राक्षामतः अनन्यप्रणय-भावमासाद्य तस्य सहयोगेन सुखेन जीवनं यापय इति मे कामना । द्राक्षामन् ! यदा कदा पत्रेण कुशलसमाचारं प्रेषयिष्यसि ?

द्राक्षामान्—अधुना तु आवां मित्रस्य गृहं गमिष्यावः । आशासे तस्य साहाय्येन कस्याश्चित् पत्रिकायाः कार्यालये सहसम्पादकस्य कार्यं करिष्यामि । तदनन्तरं पत्रं प्रेषयिष्यावः, कदाचित् अवसरं प्राप्य अस्मत्समीपे आगमिष्यसि चारुलतया सह ?

विलीना—अवश्यमागन्तव्यम् ।

शालिनी—शुभाः युवयोः पन्थानः सन्तु । अनुजानीहि मां गमनाय ।

तृतीयं दृश्यम्

विलीना—(स्वगतम्) अहो ! सप्ताहद्वयपूर्वम् आजीविकान्वेषणाय गतः द्राक्षामान् अद्यावधि गृहं न प्रत्यागतः । किं करवाणि क्व गच्छानि, कं पृच्छेयम् ? अत्रागत्य मासद्वयं तु आवाभ्यां सुखेन यापितं परं तत्पश्चात् धनाभावेन यः कष्ट- क्रमः आरब्धः सः समाप्तिं न गच्छति । द्राक्षामान् साहित्य-लेखनक्षेत्रं विहाय न किञ्चित् अन्यत् कार्यं कर्तुम् ईहते । अहं पञ्च वा षड् वा दिवसान् भृतिं लब्ध्वा स्वल्पवेतनेन सम्पूर्णमासस्य कृते भोजनौ-षधीनां व्यवस्थां कथं करवाणि ? विदेशे ईदृशीं विपन्नाम् अवस्थां प्राप्स्यावः इति नैव अचिन्तयम् । धन्यः स हरिः येन एकस्मिन् वस्त्रनिर्माणयन्त्रालये अंशकालिकीं भृतिं प्रदाप्य अहं रक्षिता । यदि स साहाय्यं नाकरिष्यत् तर्हि निराश्रिता बुभुक्षिता अहम् अमरिष्यम् । कियन्तं कालं, हे प्रभो ! कष्टानि सहिष्ये ? (द्वारे खट् खट् ध्वनिः श्रूयते)

द्राक्षामान्—आगतः अस्मि विलीने । अनावृतकपाटं द्वारं देहि ।

विलीना—(द्वारमुद्घाट्य) एहि ।

द्राक्षामान्—किमिदम् ? त्वया सम्यक् चलितुमपि न पार्यते ।

विलीना—धन्यः असि, सप्ताहद्वयानन्तरम् अन्तर्वत्नीं पत्नीं स्मृतवान् असि । दिवसत्रयपूर्वं पादस्खलनेन अहं सोपानात् अधः पतिता । तत्कालं यदि हरिः अत्र न आगमिष्यत् तर्हि पीडया क्रोशन्ती यमलोकम् अगमिष्यम् ।

द्राक्षामान्—अहो दुःखदः अयं वृत्तान्तः ।

विलीना—हरिस्तु शैल इव उन्नतः प्रकृत्या च कुसुमकोमलः विद्यते । स एव औषधोपचारेण मम परिचर्याम् अकरोत् ।

द्राक्षामान्—मित्रस्य कर्तव्यं पूरितं तेन । यदा कदा कष्टकाले तेन एव आर्थिकी सहायता प्रदत्ता । धन्यं वदामि तम् ।

विलीना—तव दीर्घयात्रायाः का वार्ताः ?

द्राक्षामान्—सर्वत्र धनार्जने विफलतां प्राप्य इतस्ततः भ्रमित्वा गतसप्ताहे समीपस्थे नगरे एकस्याः पत्रिकायाः सम्पादनमुद्रणकार्यालये सहसम्पादकस्य कार्यं लब्धं परन्तु.......

विलीना—परन्तु किम् ?

द्राक्षामान्—पत्रिकायाः अविवाहिता स्वामिनी अविवाहिताय युवकाय एव भृतिं ददाति अतः अहम् अविवाहितः अस्मि तथा अहर्निशं तव कार्यालये उषित्वा कार्यं करिष्यामि इति उक्त्वा आजीविकां लब्धवान् ।

विलीना—अहो निरंकुश ! ईदृशः कठोरहृदयः असि । धनस्य अर्जनार्थं पत्नीं परित्यक्तुं विचारयसि किम् ?

द्राक्षामान्—नहि, नहि, मम पक्षात् तु परित्यागस्य वार्ता नास्ति । स्वकीयभृतेः अर्धं तुभ्यं दातुम् अद्य आगतास्मि यदि त्वमेकाकिनी अत्र उषितुं पारयसि । अन्यथा.....

विलीना—स्पष्टं कथय अन्यथा किं विचारयसि ?

द्राक्षामान्—यदि त्वं चिन्तयसि यदहं तुभ्यं सुखसाधनानि प्रदातुं समर्थः नास्मि तदा आवयोः परस्परवियोगः एव श्रेयस्करः ।

विलीना—प्रवञ्चक ! एवं पराङ्मुखः भवसि ? कुत्र गताः तव ते प्रेमालापाः, आजीवनं सहयोगस्य वचनानि, मनसः तर्पणानि च तानि चाटुवचांसि ?

द्राक्षामान्—ये दिवसा आवाभ्यां समं यापिताः ते स्वप्नेन्द्रजालसदृशाः आसन् । अधुना यदा आवयोः स्वप्नभङ्गः जातः तदा सहवसनेन कः लाभः ?

विलीना—द्राक्षामन् ! त्वत्कृते मया जीवने नानाकष्टानि सोढानि परं तव ईदृशी मय्युपेक्षा सोढुं न शक्यते ।

द्राक्षामान्—कतिपयमासेभ्यः त्वयापि मय्युपेक्षा प्रदर्शिता । तव हृदये मामधिकृत्य यः प्रणयाङ्कुरः प्रारोहत् सः छिन्नः वर्तते । प्रणये छिन्ने सहवसनं दण्ड एव प्रतीयते ।

विलीना—स्वच्छन्दवृत्तिः असि द्राक्षामन् ! या तव हृदयस्थली मया उर्वरभूमिः इति कृत्वा स्वीकृता सा तु मरुस्थली आसीत् । अहमेव मूढा आसं यत् त्वयि विश्वासं कृतवती । श्रुतं मया यत् छात्रकाले त्वं पौलीनाम्नीं कन्यां प्रति प्रणयं कृत्वा पश्चात् तां परित्यज्य अन्याम् अस्पृह्यः । अद्य ममापि तादृशी दशा जाता । मनोरथा मे शैलशिखरात् अधः पतिताः ।

द्राक्षामान्—विलीने, जीवनमिदं दीर्घयात्रा अस्ति । पथि अनेके सहचराः मिलन्ति । यावत् परस्परं भावयन्तः प्रेमभावेन सह चलन्ति तावत् सहचराः, यदा केनापि कारणेन सहचलितुं न शक्नुयुः तदा ते भिन्नपथान् अनुसरेयुः इत्येव श्रेयस्करम् । अतः स्वतन्त्रा भव त्वं, मामपि स्वतन्त्रं कुरु । स्वेच्छया

जीव, मह्यमपि स्वेच्छया जीवितुम् अधिकारं देहि ।

विलीना—अहो वृक्षमाश्रित्य वर्धमाना फलिष्यमाणा लतिका वृक्षात् पातिता ।

द्राक्षामान्—फलतु लतिका अन्याधारवृक्षमाश्रित्य ।

विलीना—यतिष्ये जीवितुं त्वां विना । त्वया तु मम गर्भस्थशिशोरपि चिन्ता न कृता परं मम मातृत्वम् अस्य कृते मां जीवितुं प्रेरयति । भग्नां हृदयतन्त्रीं पुनः समायोज्य नवस्वरम् उत्पादयितुं यतिष्ये । अद्य एव आनय विवाह-विच्छेदपत्रम् । नाहम् इच्छामि अस्मिन् नगरे स्थातुं क्षणमपि । गृहाण इमानि मम आभूषणानि विवाहाङ्गुलीयकं च, इमानि विक्रीय गृहस्वामिने गृहभृतिः दातव्या । अहं श्वः धेनुमार्गं गमिष्यामि ।

चतुर्थं दृश्यम्

मोनिका—द्राक्षामन् ! अद्य त्वया मुद्रणालयं गत्वा शीघ्रम् एव पाठशोधनकार्यं पूर्णनिष्ठया कर्तव्यम् । गतसप्ताहे काश्चित् अशुद्धयः तव प्रमादात् अवशिष्टा आसन् ।

द्राक्षामान्—पाठशोधनकार्यस्य उत्तरदायित्वं हंसस्य आसीत् । तस्य अनुपस्थितौ अत्यधिकश्रान्तेन अपि मया तत्कार्यं कृतमासीत् ।

मोनिका—पत्रिकायाः कार्यं तु अहर्निशं चलति । तत्र सर्वविधकार्यं करणीयं भवति । श्वः त्वया मत्कृते सम्पादकीयम् अपि लिखितव्यम् । पत्रिकायाः सदस्य-संख्या कथं वृद्धिं गच्छेत् इति चिन्ता मां बाधते ।

द्राक्षामान्—मासस्य प्रथमतिथौ मया सप्ताहद्वयस्य अवकाशप्राप्त्यर्थं प्रार्थनापत्रं प्रदत्तमासीत् किं तद्विषये भवत्या विचारितम् ?

मोनिका—सम्यग् विचारितम् अस्वीकृतं च ।

द्राक्षामान्—केन कारणेन ? मया तु मित्रस्य कार्यवशात् नगराद् बहिः गन्तव्यम् ।

मोनिका—कारणं नहि प्रष्टव्यम् । यदि मित्रकार्यं महत्त्वपूर्णमस्ति तथा पत्रिकायाः कार्यं गौणं मन्यसे तर्हि त्यागपत्रं दत्त्वा गन्तव्यम् ।

द्राक्षामान्—अहो मम परिश्रमस्य अयं पुरस्कारः ! भवतु, यदि अवकाशाय प्रार्थनापत्रम् अस्वीकृतं तदा मम त्यागपत्रं स्वीकर्तव्यम् । ईदृशीं दासभृतिं कर्तुं न पारयामि ।

मोनिका—स्वकविकर्मणि व्यापृतेन त्वया पत्रिकायाः कार्यं सुष्ठु न क्रियते इति अनुभूतं मया । अतः स्वेच्छया तव निर्गमनमेव श्रेयस्करम् । त्यागपत्रं दत्त्वा कार्यालयात् स्ववेतनं गृहाण ।

द्राक्षामान्—भवतु । अधुना स्वतन्त्रविहगः अस्मि । यथारुचि गीतं गास्यामि । यन्मे रोचेत तदेव शिरोवस्त्रं धारयिष्ये । **स्वान्तः सुखाय लिखिष्यामि स्वान्तः सुखाय पठिष्यामि। साहित्यकारेण तु स्वतन्त्रभावेन लेखनकार्यं कर्तव्यं न तु कस्यचित् आदेशेन ।**

मोनिका—शोभनम् इदं सिद्धान्तरूपेण परं क्रियान्वयनं नहि सरलम् । भोजनावसरे व्याकरणं न भुज्यते । काव्यपानेन तृषा नहि वार्यते ।

द्राक्षामान्—शरीरस्य संरक्षणाय मनुष्यः श्रमं करोति । श्रमं विना किञ्चिदपि नहि प्राप्तव्यम् । परं यदि श्रमिकः रुधिरं स्वेदीकृत्य श्रमं करोति तदापि स्वामी तत् श्रमं न स्वीकरोति, तस्य मूल्यं न जानाति । तेन श्रमेण कः लाभः ? मया तु अन्विष्यते मनसः शान्तिः, ताम् अन्वेष्टुं गच्छामि ।

पञ्चमं दृश्यम्

द्राक्षामान्—सखे पाल ! षड्वर्षपूर्वं परित्यक्ता मया मम पत्नी विलीना । परमद्यापि तां मुग्धां विस्मर्तुं नहि शक्नोमि ।

पालः—परित्यागस्य अनुतापः व्यथयति त्वाम् ।

द्राक्षामान्—ह्यः रात्रौ म्यूनिखनगरे भारतदेशस्य कविकालिदासेन विरचितस्य अभिज्ञानशाकुन्तलनाटकस्य प्रस्तुतिम् अवलोक्य नवीकृता मम मनोव्यथा । नायिका शकुन्तला मम प्रियाया विलीनायाः प्रतिकृतिः प्रतीयते

स्म । सखे दुष्यन्तेन तु शकुन्तला पुनः प्राप्ता परम् अहं कथं प्राप्स्यामि स्वप्रियाम् ?

पालः—अलं पश्चात्तापेन । सखे दूरं गता सा तव जीवनात् ।

द्राक्षामान्—पाल ! सदैव जीविष्यति सा मम कवितायाम् इति मन्ये ।

पालः—श्रावय मे यल्लिखितं त्वया तामधिकृत्य ।

द्राक्षामान्—अवश्यं श्रावयामि येन मनोव्यथाभारो लघूभवेत् ।

पालः—अवहितः अस्मि ।

द्राक्षामान्—उत्कटयोत्कण्ठया स्वपितुं नाशक्नवम्

पाटलसंसर्गसुरभिवनवाता मामस्पृशन्

मम गवाक्षमार्गात्

तीव्रसुगन्धप्रवाहोऽन्तः प्राविशत्

मया श्रुतः

उच्चदेवदारुतरुमध्याद् आगच्छन्

मधुरसङ्गीतध्वनिः

यत्रापि स्थितं चलितं गतं मया

तत्र सर्वत्र

मत्कर्णपथे एक एव ।

स्वर आयातः

शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला ।

पालः—वसन्ते आगते प्रियायाः स्मृतिः द्विगुणिता भवति । अग्रे श्रावय ।

द्राक्षामान्—अयि हिमगिरे चिरन्तन !

उच्चैः स्वशीर्षं कृत्वा गगनाभिमुखम्

किमर्थं प्रेषयसि त्वं मत्पादसमीपम्

शीतला जलधारा: ?

तदूर्मय: सुवासिता:

कलकलायमाना:

किमर्थमायान्ति मदन्तिकम् ?

कम्पमानया चकितचकितया

अनया दृष्ट्या

किमर्थमन्विष्यते मया सर्वत्र ।

शकुन्तला शकुन्तला शकुन्तला ।

पाल:—शोभनं शोभनम्। सुकोमला भावा हृदयं स्पृशन्ति। सा आसीत् तव कविताया रमणीया पङ्क्ति: या त्वया स्वयं लिखिता स्वयमेव प्रोञ्छिता ।

द्राक्षामान्—शृणु, सम्बोधिता मया प्रिया एवम्—

अयि बाले ! मामवलोक्यैव त्वया

स्वस्निग्धे सुकोमले सुलोचने

मन्नयनयोर्मज्जिते ।

मन्ये उपस्थित: स क्षणो यदासीत् प्राप्तं त्वया

मत्प्रणयबन्धनस्य प्रतिबिम्बम्

मन्नामाङ्कितमङ्गुलीयकम्

एक: क्षण: किम् एको दिवस: किं

नहि नहि

सहस्रं वर्षाणि वियोजयन्ति, तिष्ठन्ति मार्गे

सहस्त्रं वर्षाणि वियोजयन्ति, तिष्ठन्ति मार्गे
त्वया सरोवरेऽङ्गुलीयकं नहि पातितम्
तत्तु दुष्यन्तेनैव स्वयं दूरेऽपसारितम्
तीव्रं जलप्रवाहं बध्नन्नपि सः
अङ्गुलीयकं न प्रतिदास्यति ।
पश्य तस्मिन् वने नदीतटे
मृगयारतो दुष्यन्तः
शरं क्षिपति मृगशावके ।

पालः—धन्योऽसि द्राक्षामन् त्वं धेनुमार्गस्य कविः ।
धन्यश्चास्ति भारतदेशस्य अमरः महाकविः कालिदासः
यस्य नाट्यं तव कवितायाः प्रेरणास्त्रोतः अभूत् ।

द्राक्षामान्—मित्र न केवलम् अहम् अपि तु गोल्डश्मिट् मार्टिनहैमरिश, कार्लब्राय-स्बालादयः अस्मद्देशीया अनेके साहित्यकाराः कालिदासस्य कृतिभिः आकृष्टाः प्रभाविताः च । मार्टिनहैमरिशमहाभागेन संस्कृतमूलतः अभिज्ञानशाकुनतलस्य यः अनुवादः धेनुमार्गीयभाषायां कृतः तस्य चत्वारि संस्करणानि प्रकाशितानि ।

पालः—क़वेः लोकप्रियतां प्रमाणयति तथ्यम् इदम् ।

द्राक्षामान्—सत्यम् इदम् । न केवलं धेनुमार्गदेशे अपितु विश्वस्य विभिन्नेषु देशेषु कालिदासस्य लोकप्रियता दरीदृश्यते । मम तु इयम् एव कामना—

नाट्यं कवेर्यन्निर्वाणमक्ष्णोः
सामाजिकानां हृद्रञ्जकं यत् ।
धर्मार्थकामान् मुक्तिं प्रदाय
लोकान् समस्तान् सुखिनः करोतु ।

अधुना इदमेव भरतवाक्यमस्तु—

धन्यं भारतवर्षं तद् धन्या च तस्य संस्कृतिः ।
राष्ट्रसंस्कृतसंस्थानं भव्यं संस्कृतमन्दिरम् ।।

।। समाप्तेयं द्राक्षामतः शकुन्तला ।।

।। इति प्रो० वेदकुमारीघईविरचितं पुरन्ध्रीपञ्चकं सम्पूर्णम् ।।





राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्

56-57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी,
नई दिल्ली-110058